व्याख्यान-सार-संग्रह माला का चौथा पुष्प।

श्रीमज्जैनाचार्य—

पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के

व्याख्यानों में से

श्रावक का सत्यव्रत।

सम्पादक—

श्री साधुमार्गी-जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज

की सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक-मण्डल रतलाम

की ओर से-

पण्डित शंकरप्रसादजी दीक्षित।

प्रकाशक-

श्री साधूमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी

महाराज की सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक-मण्डल

आफिस रतलाम [मध्यभारत]

प्रथम बार २००० प्रति | वीराब्द २४५७ विक्रमाब्द १९८७ | मूल्य =)

वक्तव्य ।

—— *: ——

संसार के प्रायः सभी प्राणी, असत्य के वातावरण में बहे जा रहे हैं। ऐसे समय में, सत्य का सर्वथा सेवन करने वाले, केवल महात्मा लोग ही हैं। त्रिकरण, त्रियोग, अर्थात् मनसा वाचा कर्मणा, सत्य की आराधना, केवल महा-पुरुष ही करते हैं। जनता, ऐसे महात्माओं को पूज्य मानती है और उनके उपदेश के एक एक शब्द को, अमूल्य समझती है। वास्तव मे, वे ही जगत् के सच्चे कल्याण के पथ-दर्शक है। जिन लोगो को, उनके वचनामृत श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त होता है, वे महान् पुण्यशाली हैं। शास्त्रकारों का कथन है, कि दस बोलों की योग पाई मिलना बहुत कठिन है। जिनमे, छः बोल तो बहुतो को प्राप्त हो भी जाते है, पर महात्माओ के उपदेश-वाक्य श्रवण करने का योग, बहुत ही दुर्लभ है। क्योंकि, महात्मा लोग वहीं विचरते हैं, जहाँ उनको योगपालनादि में, असुविधा नहीं होती। भारतवर्ष का, बहुत सा भाग ऐसा है, जहाँ महात्माओं का पधारना होता ही नहीं, या यदा कदा ही होता है, सदा नहीं। ऐसी दशा में, वहाँ के निवासी, महात्माओं के वचनामृत से प्रायः वञ्चित रहते हैं।

महात्माओं के वचनामृत का, विस्तृत रूप से फैलाव हो और उनसे प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक स्थान पर लाभ उठा सके इस उद्दे-

श्य को सन्मुख रख कर, श्रीमज्जैनाचार्य, पूज्य श्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज के व्याख्यान, जो वर्तमान समय मे, विशेष प्रतिभाशाली रोचक एवम् आकर्षक हैं,—इस मण्डल ने, गत तीन चार वर्ष के चौमासों मे संग्रह कराये हैं। उस संग्रह में से, तीन पुष्प 'श्रावक का अहिंसाव्रत' 'सकडाल पुत्र श्रावक की कथा' और 'धर्म व्याख्या' पुस्तक रूप मे प्रकाशित होकर, जनता के कर कमलो मे पहुंच चुके है। उक्त पुस्तकों का, जैन तथा अजैन जनता ने, सत्कार किया और प्रसन्नता प्रकट की। इतना ही नहीं, बल्कि कई विद्वानों ने 'जैन-प्रकाश,' 'तरुण राज-स्थान' आदि पत्रो मे समालोचना तथा अपनी सम्मति प्रकाशित कराकर, मण्डल का उत्साह बढ़ाया। विद्वानो के इस प्रोत्साहन से, मण्डल की उत्साह-वृद्धि हुई और मण्डल ने व्याख्यान-सार-संग्रह का चौथा पुष्प 'श्रावक का सत्यव्रत' पंडित शंकरप्रसादजी दीक्षित द्वारा सम्पादन कराया। आशा है कि पहिले की भांति इस पुस्तक का भी आदर करके, जनता मण्डल के उत्साह-वृद्धि मे सहायक होगी। जनता को, यदि इस पुस्तक से लाभ हुआ, तो मण्डल अपने को धन्य समझेगा।

विज्ञप्ति।

पुस्तक को, सुन्दर रोचक तथा शुद्ध बनाने का प्रयत्न, बन सका उतना विशेष किया गया है। तथापि, दृष्टिदोष से अशुद्धियां रही हों, या प्रूफ संशोधन में असावधानी से भूल हुई हो, तो कृपया सूचित करें। जिससे आगामी आवृत्ति मे सुधार किया जाय।

स्पष्टीकरण ।

साधु महात्माओ की भापा, परिमित होती है। इसलिये वे खूब सोच समझ कर, तथा शास्त्र को दृष्टि मे रख कर ही, उपदेश फरमाते हैं। पर, संग्राहक, अनुवादक, संशोधक, व सम्पादक महाशयो से, भाव उलट गये हों, अथवा पूज्य श्री की भाषा के विपरीत, वचन लिखे गये हों, तो यह जिम्मेदारी पूज्य श्री के ऊपर नहीं है, किन्तु यह दोष कार्य-कर्त्ताओ का समझे। जो-जो विषय, शास्त्र की दृष्टि से विरुद्ध मालूम दें, उनका खुलासा पूज्य श्री से, अथवा आफिस के साथ लिखापढी करने से, हो सकेगा।

रतलाम,
शरद पूर्णिमा
संवत् १९८७

भवदीय——
बालचन्द श्री श्रीमाल सेक्रेटरी
बरदभाण पीतलिया प्रेसीडेण्ट,

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन, पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक-मण्डल रतलाम (मालवा)।

——o——
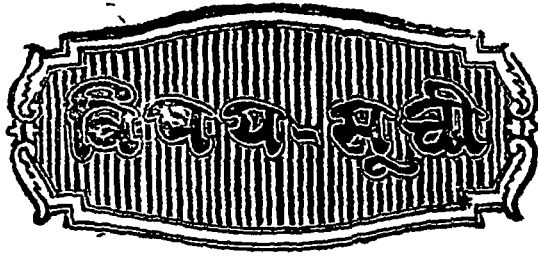
विषय	पृष्टांक ।
(१) सत्य क्या है ?	१
(२) सत्य का महत्व ।	७
(३) झूठ ।	११
(४) सत्य से लाभ और झूठ से हानि ।	१९
(५) सत्य का बल ।	५४
(६) श्रावक का स्थूल-झूठ त्याग ।	६२
(७) स्थूल झूठ के विभाग ।	७२
(८) दूसरे व्रत के अतिचार ।	८१
(९) उपसंहार ।	९५

* ॐ अर्हम् *

श्रावक का सत्य-व्रत ।

सत्य क्या है ?

तं सच्चं भगवं !

प्र० व्या० सूत्र

अर्थात्—सत्य ही भगवान् है ।

जिस सत्य की प्रशंसा उक्त प्रकार से की है, उस सत्य की पूर्ण-व्याख्या करना और "सत्य क्या है" यह पूरी तरह बतलाना हमारे और आपके लिये यदि असम्भव नहीं. तो कठिन अवश्य है । सत्य की पूर्ण-व्याख्या वे ही महापुरुष कर सकते हैं, जिन्होंने इसको पूर्णतया प्राप्त कर लिया हो । जिन महापुरुषों ने सत्य को पूर्ण-रूप से प्राप्तकर लिया है, उनमे और ईश्वर में कोई भेद भी नहीं रहता । हममे तो अभी इतनी भी शक्ति नहीं है, कि ऐसे महापुरुषों ने शास्त्रो में जो कुछ कहा है, उसे पूर्णतया समझ सकें ।

सत्य की पूर्ण व्याख्या करना यद्यपि हमारे लिये कठिन अवश्य है, तथापि प्रत्येक मनुष्य प्रयत्न करने पर सर्वथा नहीं, तो किसी अंश में अपने ध्येय पर अवश्य पहुंचता है। इसी के अनुसार हम अपनी शक्ति भर "सत्य क्या है ?" यह बताने का उपाय करते है।

वैसे तो प्रत्येक मनुष्य को सम्भवत. "सत्य क्या है ?" यह जानने की इच्छा रहती होगी, परन्तु सत्य को अच्छी तरह वे ही लोग जान सकते हैं, जिन्हें सत्य प्यारा है। जो सत्य के उपासक हैं या होना चाहते हैं और सत्य के आगे त्रिलोक की ऋद्धि ही नहीं, वल्कि अपने प्राण तक को तुच्छ समझते हैं। किसी एक सम्प्रदाय, धर्म या मजहब के पीछे जो उन्मत्त है, जो स्वार्थ-वश अच्छे बुरे की परवाह नहीं करता, सत्यासत्य को न देख, जो केवल हाँ मे हाँ मिलाना जानता है, ऐसा मनुष्य सत्य को नहीं पहिचान सकता। इस वातको इतने मे ही छोड़, अव हम यह वतलाते हैं, कि "सत्य क्या है।"

जो नित्य है, अविनाशी है और विकारों से रहित है, उसे 'सत्य' कहते है। अविनाशीपने को प्रकट करने के लिये जो व्यवहार किया जाता है, वह 'सत्य' है। ठाणाङ्ग सूत्र के चौथे ठाणे मे कहा है.—

चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते, तजहा—
काउज्जुयया भासुज्जुयया भावु—
ज्जुयया अविसंवायणाजोगे ।

"काया की सरलता, भाषा की सरलता, भाव की सरलता, और मन, वचन, काया, इन तीनो के योग की सरलता का नाम 'सत्य' है।"

जिस विचार, बात और कार्य्य का त्रिकाल में भी उलट-पलट न हो, जिसको अपनी आत्मा निष्पक्ष भाव से अपनावे, जिस के पूर्णरूप से हृदय में स्थित हो जाने पर भय, ग्लानि, अहंकार, मोह, दम्भ, ईर्षा, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ आदि कुत्सित भाव निःशेष हो जावें, जो भूत में था, वर्तमान में है और भविष्य में होगा, तथा जिसके होने पर आत्मा को वास्तविक शान्ति प्राप्त हो, उसका नाम 'सत्य' है।

योग-दर्शन, साधन-पाद के तीसरे सूत्र के भाष्य में वेदव्यास-जी ने भी सत्य की व्याख्या निम्न प्रकार से की है।

> सत्य यथार्थे वाङ्मनसे, यथादृष्ट
> यथानुमित यथा श्रुत तथा वाङ्मन-
> श्चेति। परत्रबोध सक्रान्तये वा-
> गुक्ता सा यदि न वंचिता भ्रान्ता वा
> प्रतिपत्ति वाध्या वा भवेदिति।

"मन सहित वाणी के यथार्थ होने का नाम 'सत्य' है। यानी जैसा देखा समझा और सुना है, दूसरे को कहते समय मन और वाणी का ठीक वैसा ही प्रयोग हो, उसे 'सत्य' कहते हैं। देख, सुन और समझ कर जो बात अपनी समझ में आयी है, ठीक

वही सुननेवाले की भी समझ में आवे, उसका नाम 'सत्य' है। भाषा में ठीक वही शब्द प्रयोग करने पर भी वाक्चातुरी या असावधानी से सुननेवाला भ्रम में पड जाय या ठगा जाय, तो उसका नाम 'सत्य' नहीं है।"

जिसके द्वारा अवास्तविक बात, विचार और कार्य का विरोध होता है, तथा जिसके प्रकट हो जाने पर अवास्तविक विचार, बात, और कार्य्य नहीं ठहर सकते हैं, उसे 'सत्य' कहते हैं। अर्थात् वास्तविक विचार, बात और कार्य 'सत्य' है। महाभारत में कहा है:—

अविकारितम सत्य मर्ववर्णेपु भारत।

"सभी वर्णों में सदा विकार रहित रहने वाले का नाम 'सत्य' है।"

सत्य की मूर्ति किसी पाषाण की बनी हुई नहीं है, न इसका कोई स्थान ही नियत है। यह देह में स्थित जीव के समान सब जगह मौजूद है। कोई वस्तु या स्थान ऐसा नहीं है, जहां यह न हो। जिस वस्तु मे सत्य नहीं है, वह वस्तु किसी काम की ही नहीं रहती और उसका नाम भी बदल जाता है। जैसे, सूर्य मे सत्य वस्तु 'प्रकाश' है। यदि सूर्य मे से प्रकाश निकल जाय, तो उसे सूर्य कोई न कहेगा। दूध मे, सत्य वस्तु 'घृत' है। यदि घृत निकल जाय, तो उसे दूध कोई न कहेगा। तात्पर्य यह है कि, 'सत्य' उस स्वाभाविक और वास्तविक वस्तु का नाम है, जिसके होने पर किसी वस्तु, विचार कार्य आदि के नाम, रूप तथा गुण मे परिवर्तन न हो

सके और जिसके न रहने पर ये तीनो, या इनमें से कुछ बाते बदल जायँ।

प्रकृति ने मनुष्य के हृदय में एक से एक उत्तम गुण पैदा किये है। उत्तम गुण सीखने के लिए मनुष्य को कहीं जाना नहीं पड़ना, वे तो सर्वथा स्वाभाविक होते हैं। यदि मनुष्य कुसंग में पड़ कर बुरी बाते अपने हृदय में न भर ले और जन्म से ही सत्य के वातावरण में पले, तो सम्भवत. वह असत्याचरण का विचार भी न करे। यदि किसी शिशु को, सत्यासत्य-विवेक का उपदेश न भी दिया जाय और असत्य-आचरण उसके सामने न किया जाय, तो निश्चित ही वह सत्य का अनुगामी बनेगा। सारांश यह कि, 'सत्य' एक प्रकृतिदत्त गुण है।

'सत्य' एक व्यापक और सार्वभौम सिद्धान्त है। संसार में अनेक मत-मतान्तर प्रचलित हैं और उनके सिद्धान्त भी पृथक्-पृथक् हैं। बहुत से मतों के ऊपरी सिद्धान्त तो, इतनी भिन्नता रखते हैं, कि एक मतानुयायी दूसरे मतानुयायी से नहीं मिल पाते। बल्कि, इन्हीं ऊपरी सिद्धान्तों को लेकर प्राय आपस में महायुद्ध मचा देते हैं। ऐसा होते हुए भी, सब मतावलम्बी यदि गम्भीरता पूर्वक निष्पक्ष-दृष्टि से विचार करे, तो मालूम होगा कि धर्म की नींव 'सत्य' के ऊपर ही है और वह सत्य सबका एक है। उस सत्य को समझ लेने पर, वे ही लोग जो आपस में धर्म के नाम पर द्वेष रखते हैं, द्वेष-रहित हो, एक दूसरे से गला मिलाकर भाई की तरह प्रेम पूर्वक रह सकते हैं।

सत्य का पूजन, प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। इसके लिए जाति-विशेष या धर्म-विशेष का कोई बन्धन नहीं है। बल्कि जो कोई सत्याचरण करता है, वही पूरा धर्मात्मा बन जाता है। सत्य के पूजन की सामग्री के लिए, वैसे तो कौड़ियाँ भी खर्च नहीं होती, पर कभी-कभी इतनी कीमत चुकानी पड़ती है, कि जिसकी समानता, संसार की सारी वस्तुएं भी नहीं कर सकतीं। यदि कोई पूछे कि, "सत्य का पूजन किस तरह करना चाहिए?" तो उत्तर मिलेगा, 'सत्यं चर' अर्थात् सत्य का आचरण कर। मन, वचन और काया से, सत्य का आचरण करना ही सत्य की पूजा है।

——:※:——

सत्य का महत्व ।

सच्चंमि धिइ कुव्वहा । एत्थोवरए
मेहावी । सव्वं पावं कम्म जोसइ ॥

आ० सू० प्र० श्रु०

"यथावस्थित वस्तु-स्वरूप को प्रकट करनेवाला सत्य ही है । कुमार्ग का परित्याग करके, जो मनुष्य सत्य को ग्रहण करता है और उसके पालन में धैर्य्य रखता है, वही तत्वदर्शी, सब पाप-कर्म्मों का नाश करता है ।"

शास्त्र के उक्त प्रमाण से प्रकट है कि, 'सत्य' पापो का नाश करने वाला है । विना सत्य को अपनाये, वे पाप-कर्म, जो अनन्त काल से जीव को घेर रहे हैं—दूर नहीं होते । तात्पर्य यह कि, पापों का नाश करके स्वर्गादि सुखो को प्राप्त करानेवाला, सत्य ही है ।

संसार मे, प्रत्येक मनुष्य धर्म का इच्छुक रहता और अपनी आत्मा का कल्याण चाहता है । आत्मा का कल्याण धर्म से ही होता है । जिससे कि आत्मा का कल्याण होता है, उस धर्म में प्रधान वस्तु 'सत्य' ही है । यदि, धर्म से सत्य को पृथक् कर दिया जाय, तो धर्म नाममात्र के लिए शेष रह जायगा, अर्थात् अपूर्ण होगा । लेकिन धर्मात्मा तभी बन सकते हैं, जब वास्तविक सत्य का पालन किया जाय । नामधारी सत्यवादी धर्मात्मा नहीं बन सकते । वैसे तो 'सत्य' वस्तु को सब मानते हैं, लेकिन इसे पूरी तरह कार्यरूप में नहीं लाते ।

सत्य को जैन-शास्त्रो ने तो धर्म के प्रधान अंगो में से एक माना ही है, परन्तु अन्य धर्मों में भी सत्य को यही स्थान प्राप्त है। जैसे, महाभारत शान्ति पर्व में कहा है.—

नास्ति सत्यात्परो धर्मः ।

अर्थात्-सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

तात्पर्य यह है, कि सत्य को सभी ने धर्म के प्रधान अंगो में माना है। सत्य की विशेष प्रशंसा के लिये महाभारत में कहा है—

सत्यस्य वचन साधु न सत्याद्विद्यते परम् ।

"सत्य वचन ही सबसे श्रेष्ठ है। सत्य से उत्तम और कुछ भी नहीं है।"

प्रश्न व्याकरण सूत्र में सत्य की प्रशंसा में कहा है.—

गन्तोसहिविज्जासाहणत्थ चारण-
गणसमणसिद्धाविज्ज मणुयगणाणं
वन्दणिज्ज अमरगणाण च अच्चणिज्ज
असुरगणाण च पूयणिज्ज अणेग-
पासडिपरिग्गाहियं ज तं लोकम्मिसार-
भूयं गम्भीरतर महासमुद्दाओ
थिरतरगं मेरुपव्वयाओ
सोमतरग चन्दमण्डलाओ दित्ततर
सूरमण्डलाओ विमलतरं सरयन-
हतलाओ सुरभितर गन्धमायणाओ ॥

"मन्त्र, औषधि और विद्याओ का साधन सत्य से ही होता है। चारण (देव विशेष) तथा श्रमणों की, आकाश गमनादि विद्याएं सत्य के प्रभाव से ही सिद्ध होती हैं। सत्य, मनुष्यों का वन्दनीय, देवताओ का अर्चनीय, असुरगणो का पूजनीय और अनेक व्रतधारियो से स्वीकार किया हुआ, संसार के अन्दर सारभूत (निचोड़) है। सत्य चोभ करने के योग्य न होने से, महा-समुद्र से भी बढ़ कर गम्भीर, विचलित न होने के कारण, मेरु पर्वत से भी अधिक स्थिर, सन्ताप को दूर करने के कारण, चन्द्र-मंडल से भी अधिक सौम्य, वस्तु-स्वरूप का यथार्थ प्रकाशक होने से, सूर्य-मंडल से भी अधिक तेजस्वी, अति-निर्दोष होने के कारण, आकाश-मंडल से भी अधिक स्वच्छ, और सत्य-प्रेमियों के हृदय को वश मे रखने के कारण, गन्धमादन-पर्वत से भी अधिक सुगन्धित है।"

सत्य के विषय में भर्तृहरि ने कहा है—

'सत्यं चेत्तपसा च किं ?'

"सत्य के समान दूसरा तप कौनसा होगा ? अर्थात् सत्य ही श्रेष्ठ-तप है।"

चाणक्य ने भी अपनी नीति में कहा है.—

मुक्तिमिच्छासि चेत्तात विषयान्विषवत्त्यज ।
क्षमार्जवदयाशौच सत्य पीयूषवत्पिब ॥

"हे भाई, यदि आप मुक्ति के इच्छुक हैं, तो विषयो को विष

के समान छोड़कर, सहन-शीलता, सरलता, दया, हृदय की पवित्रता और सत्य,को अमृत की नाईं पियो।"

सत्य का महत्त्व बताने के लिये, यदि और शास्त्रादि के प्रमाण दिये जायँ, तो प्रमाण ही प्रमाण से ग्रन्थ तयार हो सकता है। इसलिये, इतनेही प्रमाणो को पर्याप्त समझ कर, अब झूठ का भी थोड़ा सा प बतलाते हैं, जिसमें आप लोग उसे भी समझ सकें।

झूठ ।

नहिं असत्य सम पातक पुजा, गिरि सम होहि न काटिक गुजा ।

"तुलसीदास"

"जिस तरह, करोड़ो गुंज (चिरमी) का ढेर, पहाड़ के समान नहीं हो सकता, इसी तरह, अन्य पापो का समूह, झूठ के पाप के समान नहीं हो सकता । अर्थात्, झूठ का पाप सब पापों से बढ़कर है ।"

सत्य का विरोधी, झूठ है । सत्य की जो व्याख्या की गई है, उसके विपरीत होने का नाम है 'असत्य' या 'झूठ' । पहले कहा गया है कि, धर्म का उत्पादक और परलोक में सुखदाता 'सत्य' ही है, इसके विरुद्ध असत्य, धर्म का नाशक और परलोक में दुःख-दाता है । परलोक के लिये तो 'असत्य' हानिप्रद है ही, परन्तु इस लोक के लिये भी यह हानिदायक है । इसकी निन्दा के लिये शास्त्र मे कहा है—

जंबू ! वितियं च आलिय वयणं लहु सगलहु
चवल भाणियं भयकर दुहकर अयस-
करवेरकरग अरतिरातिरागदेस-
मणसं किलेस वियरणं अलियनियाडि-
साइजोयबहुलं णीयजणणिसेवियं
निसंसं अप्पच्चयकारगं परम साहु-
गरहणिज्जं परपीलाकारकं परमकण्ह-

लेससाहिय दुग्गतिविणिपायवड्ढणं-
भवपुणब्भवकर चिरपरिचिअ
मणुगयं दुरत कित्तियं वीय अहम्मदारं।

"दूसरा आस्रवद्वार, अलीक वचन यानी मिथ्या-भाषण है। यह मिथ्या भाषण, लघु-अर्थात् जो गुण-गौरव से हीन हैं, उनसे सेवन किया जाता है। यह, भय, दु ख, अकीर्त्ति और वैर को बढ़ाता है, तथा अरति (पारलौकिक विषयो से द्वेष) रति (सासारिक विषयो से प्रेम) और राग-द्वेष रूप मन के क्लेश को, देनेवाला है। मिथ्या भाषण करने से, मनुष्य का विश्वास नहीं रहता और इससे, प्राणियो की भी हिंसा होती है। इस मिथ्या-भाषण के कारण, प्राणी को बार-बार संसार मे जन्म-मरण करना होता है। यह अनादिकाल से चले आते हुए संसार मे प्राणियो के साथ लगातार चलता आया है। इसका परिणाम, बहुत ही भयंकर होता है। यह, अधर्म का दूसरा द्वार है।"

'असत्य' अस्वाभाविक, अवास्तविक और कृत्रिम वस्तु है। मनुष्य को, असत्य उसी प्रकार सीखना पड़ता है, जैसे ठग या चोर, किसी को अपना गुरू बना कर, उससे शनै -शनै. वह कला सीखता है। सीखने के पहिले, जैसे ठग या चोर मे यह दुर्गुण नही होते, उसी प्रकार मनुष्य के स्वच्छ हृदय मे भी, 'असत्य' नही होता है।

जो कार्य, बात और विचार मन, वचन, या काया से अयथार्थ और दूसरे के हृदय को दुःख देनेवाला हो, उसको 'असत्य' कहते

हैं। अयथार्थ तो असत्य है ही, परन्तु जिस बात, कार्य या विचार से दूसरे को दुःख पहुंचे, उसके वास्तविक और यथार्थ होने पर भी शास्त्रकारो और विद्वानो ने उसकी गणना, सत्य मे नही की है–जैसे, सुगडायंग सूत्र मे कहा है—

सच्चेसु वा अणवज्ज वयती।

"जो वाक्य, पाप रहित और दूसरे को पीड़ा उत्पन्न करने वाला न हो, वही सत्य है। यानी, जिस वाक्य से दूसरे को पीड़ा हो, वह सत्य नहीं है।"

दशवैकालिक सूत्र मे, मुनियों को भाषा प्रयोग का उपदेश देते हुए कहा है—

तहेव काण काणत्ति पंडग पडगत्तिवा।
वाहिय वापि रोगित्ती तेण चोरत्ति न वए॥

"काने को काना, नपुंसक को हीजडा, व्याधिग्रस्त को रोगी, चोरी करनेवाले को चोर, सत्य होते हुए भी न कहना चाहिए। यह सत्य, सत्य नही कहलाता, क्योकि इससे, दूसरे के हृदय को दुःख होता है।"

और कहा है—

तहेव फरुसा भासा गुरु भूओवइणी।
सच्चा मोसा न वत्तव्वा जओ पावस्स आगमो॥

"शंकित–भाषा के समान कठोर भाषा, सत्य होने पर भी लोक में, प्राणियों का घात करनेवाली अर्थात् अत्यन्त अनर्थ कारक होती है। अतः कटु-सत्य का भी प्रयोग न करना चाहिए।"

तात्पर्य यह है कि, वह सत्य जिसके कथन से दूसरे के हृदय को दु.ख पहुंचे, सत्य नहीं, वरन् असत्य है । मनुस्मृति में भी कहा है—

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोऽधिकान् ।
रूपद्रव्यविहीनाश्च जातिहीनाश्च नाक्षिपेत् ॥

"हीन अङ्ग वाले को, काना आदि, अधिक अङ्ग वाले को, छः उंगली वाला आदि, अविद्वान् को, मूर्ख आदि, अधिक आयु वाले को, बुड्ढा आदि, रूपहीन को, कुरूप आदि, द्रव्यहीन को, कङ्गाल आदि, और हीन जातिवाले को, नीच आदि न कहे। ऐसा सत्य, सत्य नहीं है।"

योग दर्शन के भाष्य मे, वेदव्यासजी ने कहा है—

एषा सर्वभूतोपकारार्थं प्रवृत्ता न
भूतोपघाताय, यदि चैव मप्यभि-
धीयमाना, भूतोपघाताय परैव
स्यात् न सत्यं भवेत् ।

"वाक्यों का प्रयोग, इस प्रकार से करना चाहिए, जिससे जीवों का मङ्गल हो। किसी को भी दुःख न हो। यदि वाक्य के ठीक-ठीक उच्चारण से भी, दूसरे को दुःख हो, तो वह सत्य नहीं, वरन् 'असत्य' है।

शास्त्रकारो और विद्वानो ने तो, इस प्रकार उस सत्य की, जो दूसरे के हृदय को दु.खित करे, निन्दा करके उसे असत्य बतलाया ही है, परन्तु ऐसे कटु-सत्य का प्रयोग करनेवाला, संसार में भी

निन्द्य समझा जाता है। इसीलिये, जिस बात, कार्य, या विचार से दूसरे को दुःख पहुंचे, वह सत्य नहीं कहलाता। बल्कि, उसकी गणना सबने झूठ में ही की है।

दशवैकालिक सूत्र के, चौथे अध्ययन की टीका में, मृषावाद (झूठ) चार प्रकार का बतलाया है। सद्भाव प्रतिषेध, असद्भावोद्भावनं, अर्थान्तरं, और गर्हाच।

'सद्भाव प्रतिषेध' उस झूठ को कहते हैं, जिसके द्वारा किसी के हृदय मे स्थित अच्छे भावो को बुरा बताया जाय। जैसे, एक मनुष्य समझता है, कि आत्मा है, पुण्य है, पाप है। उसके इन सद्भावो को निकालने के लिये कहा जाय कि, न आत्मा है, न पुण्य है, न पाप है। आदि।

'असद्भावोद्भावनं' उस झूठ को कहते है, जिसके द्वारा, किसी मनुष्य के हृदय में बुरे भावों को भरा जाय। जैसे, जीव को मारने मे धर्म और मरते हुए जीव को बचाने को पाप बताना। या किसी की किसी प्रकार की सहायता करने, माता, पिता, पति की सेवा करने और विनय करने को पाप बताना, तथा उन्हें कुपात्र समझने के भाव भरना। आदि।

'अर्थान्तर' उस झूठ को कहते हैं, जिससे किसी बात, पुस्तक, वस्तु आदि के वास्तविक अर्थ या गुण आदि की जगह, अवास्तविक अर्थ, गुण आदि बताये जायं। जैसे, गाय को घोड़ा बताना, अमृत को विष, या विष को अमृत बताना, शास्त्र के एक अर्थ का, दूसरा ही अर्थ बताना।

'गर्हीच' उस कार्य, बात या विचार को झूठ कहते हैं, जिससे किसी की निन्दा हो, या किसी के हृदय को दु ख पहुंचे ।

शास्त्र मे, असत्य के निम्न तीस नाम बताये हैं ।

तस्स य णामाणि गोणाणि हुंति तीस । तजहा–आलियं १, सठ २, अणज्ज ३, मायामोसो ४, असतग ५, कूडकवडमवत्थु ६, निरत्थयमवत्थग च ७, विद्देस गरहणिज्ज ८, अणुजुग ९, कक्कत-क्कारणाय १०, वचणाय ११, मिच्छापच्छा कडच १२, साती १३, उच्छत्तं १४, उक्कूल च १५, अट्टं १६, अब्भक्खाण च १७, किब्बिस १८, वलयं १९, गहण च २०, मम्मणं च २१, नूम २२, नियती २३, अपच्चओ २४, असमओ २५, असच्चसधत्त ग २६, विवक्खो २७, अवहीय २८, उवहिअसुद्ध २९, अवलो-वोत्ति अवि य ३०, तस्सएयाणि एवमाईणि णामधेज्जाणि हुंति तीस सावज्जस्स अलियस्स वइजोगस्स अणेगाइ ।

"गुणानुसार, मिथ्या भाषण के तीस नाम हैं । 'अलीक' (झूठ) १, 'शठ' (ठग) २, अनार्य लोग बोलते हैं, इससे 'अनार्य' ३, माया से युक्त तथा मिथ्या रूप होने के कारण; इस का नाम 'माया मृषा' ४ भी है । जो वस्तु नहीं है, उसे यह बतलाता है, इसलिये इसका नाम 'असत्य' ५ है । दूसरे को ठगने के लिये, अधिक को कम या कम को अधिक बताता है, कपट से भरा हुआ है और जो वस्तु नहीं है उसे बतलाता है, इसलिये

इसका नाम ' कूट-कपट-अवस्तु ' ६ है। सची बात से यह अलग रहता है और सत्य इससे हटा हुआ है, इसलिये इसका नाम " निरर्थक-अनर्थक ' ७ है। द्वेष के कारण, इससे दूसरे की निन्दा की जाती है, अथवा साधु पुरुष इसकी निन्दा करते हैं, इसलिये इसका नाम ' विद्वेष-गर्हणीय ' ८ है। सीधा न होने के कारण, इसका नाम ' वक्र ' ९ है। पाप या माया और उसका कारण होने से, इसका नाम ' कल्क-तत्कारण ' १० है। ठगने के कारण, इसका नाम ' वंचना ' ११ है। किये हुए काम से. मिथ्या बोलकर इनकार करने से, इसका नाम ' मिथ्या पश्चात् कृत ' १२ है। अविश्वास उत्पन्न करने के कारण. इसका नाम ' साती ' (अविश्वास) १३ है। अपने दोष को और दूसरे के गुण को झूठ बोल कर ढाकने से, इसका नाम ' उच्छन्न ' १४ है। अच्छे मार्ग से हटाकर, न्यायरूपी नदी के तट से अलग रखता है, इसलिये इस का नाम ' उत्कूल ' १५ है। पीड़ित मनुष्यों से बोला जाने के कारण, इसका नाम ' आर्त्त ' १६ है। किसी के ऊपर झूठा अपराध लगाने से, इसका नाम ' अभ्याख्यान ' १७ है। पाप का कारण है, इससे ' किल्बिष ' १८ इसका नाम है। मंडलाकार टेढा होने से, इसका नाम ' वलय ' १९ है। इसके हृदय का पता नहीं पडता, इससे इसका नाम ' गहन ' २० है। स्पष्ट न होने के कारण, इसका नाम ' मन्मन ' २१ है। वस्तु-स्वरूप को ढकता है, इस कारण, इसका नाम ' नूम ' २२ है। अपने कपट को छिपाने के लिये बोला जाता है, इसलिये इसका नाम ' निष्कृति ' २३ है।

इसमे विश्वास नहीं होता, इसलिये, 'अप्रत्यय' २४ नाम है। इसका व्यवहार अनुचित होने के कारण, इसको 'असमय' २५ कहते है। वस्तु के न होने पर भी, होना बतलाता है, इसलिये इसका नाम 'असत्य-सन्धत्व' २६ है। यह पुण्य और सत्य का शत्रु है, इस कारण, इसका नाम 'विपक्ष' २७ है। इससे बुद्धि बिगड जाती है, इसलिये इसका नाम 'अपधीक' २८ है। माया के कारण अशुद्ध होने से, 'उपधि शुद्ध' २९ नाम है। वस्तु सत्ता को, ढक देता है, इसलिये, इसे 'अवलोप' ३० कहते हैं। अलीक वचन के, ये तीस सार्थक नाम है। इस प्रकार इसके और भी अनेक नाम होते है।"

झूठ का यह थोडा सा स्वरूप बताया है। इसको अपनाने-वाला, सदा दुःख की ही ओर अग्रसर होता है।

———

सत्य से लाभ और झूठ से हानि ।

प्रिय सत्य वाक्य हरति हृदय कस्य न सखे ।
गिर सत्या लोकः प्रतिपदमिमामर्थयति च ॥
सुरा सत्याद्वाक्याद्ददति मुदिता कामिकफल ।
अत सत्याद्वाक्याद्व्रतमभिमत नास्ति भुवने ॥

"प्रिय-सत्य-वाक्य, किसका हृदय हरण नहीं करते ? अर्थात् सबका हृदय हरण कर लेते है। लोक, पद-पद मे सत्य की याचना करते हैं। देवता, सत्य से प्रसन्न होकर मनोवाञ्छित फलो को देते हैं। इसलिये संसार मे, सत्य से बढकर दूसरा व्रत नहीं है।"

सत्य और असत्य के विषय मे, ऊपर संक्षिप्त मे बतलाया जा चुका है। अब यह बतलाते है, कि सत्य के धारण करने मे क्या लाभ है और झूठ को न तजने से क्या हानि है।

सत्य का पालन, तीन प्रकार से होता है। मन से, वचन से और काया से।

जिस विचार मे, संसार के किसी प्राणी को कष्ट देने की कल्पना न की गई हो, जिसके प्रकट कर देने पर, किसी प्रकार की कुत्सित भावना का परिचय न मिले, और वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त करके निष्पक्ष भाव से प्राणिमात्र को अपना मित्र समझते हुए जो विचार किया जाय, वह मानसिक सत्य है।

जिस वाणी मे, किसी को अनुचित कष्ट पहुंचने योग्य बात न कही गई हो, जो विचारपूर्वक बोली गई हो, जिसको वक्ता ने, निःस्वार्थ-भाव से केवल सत्य का स्पष्टीकरण करने के लिये-जो बात जैसी देखी सुनी या समझी है, उसको वैसे ही समझाने को— कहा हो, वह वाचिक अर्थात् वाणी का सत्य है।

जिस कार्य के करने से, संसार के किसी प्राणी का अहित न होकर हित ही हो, जो स्वार्थ, छल, दम्भ, ईर्ष्या, द्वेषादि दुर्गुणों से रहित हो, शास्त्र मे वर्णित नीति को, जिस कार्य मे क्षति न पहुंचती हो, वह कायिक-सत्य है।

उपरोक्त तीनो भेदो का एकीकरण हो जाने पर, शास्त्र मे जिस सत्य को भगवान ने कहा है, वह सत्य तयार हो जाता है। अर्थात्- ऐसे सत्य के पूर्ण रूप से पालन करनेवाले और ईश्वर मे कोई अन्तर नहीं रहता।

सत्य-विचार, सत्य-भाषण, और सत्य-व्यवहार करनेवाला मनुष्य ही, उत्कृष्ट से उत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकता है। जिस मनुष्य मे सत्य नहीं है, समझना चाहिए कि उसकी देह जीव-रहित काष्ट-पाषाण की तरह, धर्म के लिये अनुपयोगी है।

मनुष्य को, असत्याचरण से प्रकट मे चाहे कुछ लाभ दीखे, परन्तु वे लाभ क्षणिक और अस्थायी होते हैं। तथा, इस लाभ के पीछे अनेक ऐसी हानियें छिपी रहती हैं, जो उस समय नहीं दीखतीं।

जो मनुष्य, सत्य का आचरण नही करता, वह संसार में कभी भी सुखी नहीं रह सकता, न उसका कोई आदर ही करता है। जब इसलोक के लिये यह बात है, तब परलोक के लिये भी यदि यही बात हो, तो इसमे सन्देह ही क्या है ?

संसार के लिये भी, सत्य का व्यवहार अत्यावश्यक है। यदि सत्य-व्यवहार नि शेष हो जाय, तो सारे कारबार उसी दिन बन्द कर देने पडे। क्योंकि, असत्याचरण जब प्रत्येक व्यक्ति का ध्येय हो जायगा, तो कोई एक दूसरे पर किञ्चित् भी विश्वास कैसे कर सकता है ? इन्हीं बातो को दृष्टि मे रख कर, किसी ने कहा है-

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रवि ।
सत्येन वाति वायुश्च सर्व सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥

"सत्य ने ही, पृथ्वी को धारण कर रखा है। सत्य से ही सूर्य तपता है। सत्य से ही, हवा वहती है और सब कुछ, सत्य में ही स्थिर है।"

प्रकृति ने, मनुष्य को ही सत्याचरण नहीं सिखाया है, बल्कि वह स्वयं भी सत्य का अनुसरण करती है। समयानुसार ऋतुओ का परिवर्तन और ग्रह-उपग्रहो का ठीक अपने कक्ष पर चलना भी, सत्य की पुष्टि करता है। यदि, गर्मी की ऋतु के स्थान पर वर्षा-ऋतु और वर्षा-ऋतु के स्थान पर हेमन्त-ऋतु, आदि उलट फेर हो जाया करे, तो कैसी भारी गडबड़ हो सकती है, यह बात सब जानते हैं।

जिस प्रकार प्रकृति के नियम सत्य का पालन करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य के हृदय में भी एक ऐसी वस्तु है, जो सदा सत्य-पालन का आदेश देती है। उस वस्तु का नाम है 'आत्मा'। किसी झूठे कार्य का, आत्मा कभी समर्थन नहीं करता। यदि, मनुष्य अपने हृदय मे बुरे विचारों और दुष्कर्मों की आँधी लाकर, आत्मा को चारो ओर से धूलाच्छादित न कर दे, तो आत्मा उसे सर्वदा सत्य-मार्ग ही दिखलायगा। इतना सब कुछ होते हुए जब कोई भी मनुष्य, क्रोधादि दुर्गुणों को हृदय से निकाल कर, शान्त-भाव से विचार करता है, तो वही दिव्य-प्रकाश किसी अंश मे दिखलाई देता है जो सत्य पालन करनेवाले को दिखाई दिया करता है। अर्थात्-आत्मा उसे ऐसा ही मार्ग दिखाता है, जो उस-के लिये कल्याणकर हो। जब कोई मनुष्य, किसी ऐसे कार्य को करना चाहता है, जो सत्य के विरुद्ध हो, तो उसकी आत्मा भीतर ही भीतर संकेत करती है कि, यह कार्य बुरा है। इसका करना, तुम्हारे लिये उचित और कल्याणकर नहीं है। यद्यपि पाप-पुद्गलों के पुञ्ज से आच्छादित आत्मा की यह पुकार, मन तक पूरी नहीं पहुँचती,परन्तु कैसा भी घोर-पापी मनुष्य क्यो न हो, इस मधुर-सन्देश का आभास उसे अवश्य मिल जाता है।

जो सत्य, आत्मा के रूप में मनुष्य के हृदय मे स्थित है, वही सत्य, सारे संसार मे भिन्न-भिन्न रूपों मे दिखाई देता है। प्रत्येक पदार्थ मे, यह किसी न किसी रूप में अवश्य मौजूद है। यदि यह

न हो, तो संसार की स्थिति ही एक विचित्र प्रकार की हो जाय। सत्य की अनुपस्थिति मे, मनुष्य ही मनुष्य के प्राणों का ग्राहक बन सकता है।

जिस मनुष्य के हृदय से, सत्य की शक्ति निकल जाती है, अर्थात् आत्मा को उसके बुरे विचारों के पुद्गल, चारो तरफ से घेर लेते है, वह मनुष्य न करने योग्य कार्यों को करके, उसके फल-स्वरूप नाना प्रकार के दण्ड भोगता और पाप-कर्म बाधता है। ऐसा मनुष्य जितने भी कार्य करता है, वे कार्य उसे ही शान्तिदाता नहीं होते। जैसे, एक मनुष्य सत्य को भूल, क्रोध से उत्तेजित होकर, किसी मनुष्य का वध कर डालता है। पश्चात वह चाहे भाग भी जाय, किन्तु उसकी आत्मा को कदापि सुख नही मिलता। जीवनभर उसकी आत्मा उसे कोसती रहती है। यदि, योगायोग मे पकड लिया गया और न्यायाधीश ने उसे प्राण-दण्ड दिया, तो फैसला सुनाने के समय से प्राण-नाश हो जाने के समय तक वह अपने ही विचार मे कितनी ही बार मरता और जीता है।

जिसके हृदय मे सत्य होता है, वह मृत्यु को सामने खडी देख-कर भी नही घबराता। यदि कोई मनुष्य उसका वध करने चलता है, तब भी वह ऐसी घबराहट मे नही पडता, जैसी घबराहट में असत्य का आश्रय लेनेवाला मनुष्य पड़ जाया करता है। साराश यह कि, सत्य के पालन करनेवाले को किसी भी समय अशान्ति नही होती।

'सत्य', इसलोक और परलोक में कल्याण करनेवाला और असत्य चक्कर में डालनेवाला पदार्थ है। इन दोनों के भेद को जानकर भी, जो मनुष्य सत्य का पालन और असत्य का त्याग नहीं करता, वह बुद्धिमान नहीं कहा जाता।

जो लोग, सत्य में भय और असत्य में सुख मानते हैं, वे भारी भूल करते हैं। उनके हृदय की वृत्तियें ही इस ढङ्ग की बन गई हैं, जिससे वे ऐसा समझने लग गये हैं। किन्तु यह बात नहीं है सच्चा सुख तो सत्य को ग्रहण करने से ही मिल सकता है। जिस प्रकार, अफीम खानेवाला व्यक्ति अफीम खाने में ही सुख मानता है, किन्तु वास्तव में देखा जाय, तो अफीम न खाने में सुख है इसी प्रकार असत्य का आश्रय ग्रहण करनेवाला व्यक्ति भी, असत्य में ही सुख समझता है। किन्तु उसका यह व्यसन छूट जाय, तो वह भी मानने लगे, कि मैं भूल करता था, वास्तविक सुख तो सत्य का आश्रय ग्रहण करने से ही हो सकता है।

जिस प्रकार, अफीम का नशा छोड़नेवाले मनुष्य को पहले कष्ट का अनुभव होता है; उसी प्रकार, असत्य को छोड़कर सत्य ग्रहण करनेवाले को भी, पहले कुछ कष्ट अनुभव होता है। किन्तु यदि, उसके हृदय में सद्ज्ञान का प्रकाश उदय हो जाता है, तो वह इस कष्ट को बिना अनुभव किये ही पार लग जाता है।

जिस प्रकार, बन्दर को पींजरे में डालने से उसे अटपटा लगता है, उसी प्रकार, चञ्चल चित्तवाले मनुष्य को भी सत्य—

मार्ग का अवलम्बन करने मे बड़ा अटपटापन लगता है। उसे, असत्य-मार्ग पर चलने का अभ्यास हो गया है और वह उस मार्ग का, व्यसनी बन गया है। यह व्यसन, या तो थोडा सा कष्ट सहकर छूट सकता है, या किसी पूर्ण-ज्ञानी के उपदेश से।

असत्य से, मनुष्य को कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती। शान्ति, सदैव सत्य का आश्रय लेने से ही मिला करती है। जो मनुष्य, असत्य मे सुख का अनुभव करते हैं, उन पर असत्य का पूरा कब्जा हो चुका है, ऐसा समझना चाहिए।

जो मनुष्य अफीम खाना शुरू करता है, वह सोचता है कि, मै इसे वश मे रखूंगा, किन्तु परिणाम बिल्कुल उल्टा होने लगता है। थोड़े ही दिनो मे वह अफीम, अपने भक्त पर ऐसा कब्जा जमा लेती है कि, जब तक उसे अफीम नहीं मिल जाती, वह चलने फिरने से लाचार हो जाता है और बडे दुःख का अनुभव करता है। ठीक इसी प्रकार, असत्य का सेवन करनेवाले मनुष्य की दशा होती है। जब वह असत्य का प्रारम्भ करता है, तब सोचता है कि, मै इस पर कब्जा रखूंगा, किन्तु कुछ ही दिनो में वह असत्य, उसके जीवन का मूलमन्त्र-सा बन जाता है। असत्य के बिना, उसको व्यवहार चलना कठिन दिखाई देने लगता है और शनै-शनै वह पतन की ओर जाता हुआ, असत्य के ऐसे भारी खन्दक में जा गिरता है, जहा से बिना किसी अच्छे मुनि-महात्मा या किसी अन्य सत्यमूर्ति-मनुष्य की सहायता के, उसका उद्धार होना भी कठिन हो जाता है।

मनुष्य को जब तक अनुभव नहीं हो जाता, तब तक उसकी समझ मे सत्य का महत्व नही आता। जब उसके सिर पर कोई ऐसी आपत्ति आ पडती है-जो असत्य का आश्रय लेने मे उत्पन्न हुई हो-तो, तत्काल ही वह समझ जाता है, कि सत्य का क्या महत्व है। इसके लिये, एक प्राचीन कथा का उदाहरण दिया जाता है—

एक श्रावक ने, अपने पुत्र को नाना प्रकार की शिक्षाएँ देने का प्रयत्न किया, अनेक-प्रकार से उसे समझाने की चेष्टा की, किन्तु उसके दिमाग मे एक भी न ऊँची और वह कुसङ्गति छोड़ने को तयार न हुआ। कुसङ्गति का, जो फल हो सकता है, वही हुआ। धीरे-धीरे, थोडे ही दिनो मे वह लडका चोरी करने लगा। पिता ने, फिर भी अनेक-प्रकार के प्रयत्न किये. किन्तु सब निष्फल। वह लडका न सुधर सका और दिन-दिन अपने विषय मे नैपुण्य प्राप्त करने लगा। पिता से तिरस्कृत होकर भी, उसने अपना व्यवसाय बन्द न किया और एक दिन राजा के भण्डार पर छापा मारा। किन्तु, राजा की निपुणता से चोरी का पता लग गया, तथा चोर भी पकडा गया। पकड लिये जाने पर, उस लड़के ने यह जाल रचा कि, जिस दिन राज्य-भंडार मे चोरी हुई, उस दिन मै इस नगर मे था ही नहीं। इस बात को उसने, अपने मित्रों की गवाही दिलाकर प्रमाणित कर दी। चालाकी पूरी चली, यह देख-कर राजा दङ्ग रह गया। उसने अपने मन मे सोचा कि, यद्यपि चोरी इसीने की है, तथापि जब तक इसकी चोरी नियमानुसार

प्रमाणित न हो जाय, तब तक इसे चोर कैसे ठहराया जा सकता है ? इतने ही में राजा को एक युक्ति याद आई। इस लडके का पिता, सत्य-भाषण के लिये प्रख्यात था। राजा ने, उसी की साक्षी पर मुकदमे का दार-मदार छोड दिया। लडके ने जब यह जाना कि, मेरे पिता की साक्षी पर ही मुकदमे का दार-मदार है, तो वह दौडा हुआ अपने पिता के पास गया। वहाँ जाकर उसने, पिता के पैरों पर गिरकर प्रार्थना की, कि-"यद्यपि चोरी मैंने ही की है, तथापि यदि आप राजा के सन्मुख यह कह देंगे कि, उस दिन मेरा लडका नगर में नहीं था, तो मैं बच जाऊँगा। राजा आपका कहना मानेंगे, अत यदि आप मेरी बात को-जो लगभग प्रमाणित हो चुकी है-थोडी और पुष्ट कर देंगे, तो मैं, साफ बच जाऊंगा।"

लडके ने यद्यपि नम्रता-पूर्वक उक्त प्रार्थना की, किन्तु वह श्रावक ऐसा न था। उसे सत्य की अपेक्षा अपना अन्यायी-पुत्र कदापि प्रिय नहीं हो सकता था। वह एक विद्वान के निम्न कथन का कट्टर समर्थक था।

आत्मार्थेवा परार्थेवा पुत्रार्थं वापि मानवाः।
अनृतं येन भाषन्ते ते बुधाः स्वर्गगामिनः॥

"जो अपने, पराये या अपने पुत्र के लिये भी असत्य नहीं बोलते, वे ही बुद्धिमान देवलोक को जाते हैं।"

उसने उत्तर दिया कि, यद्यपि पिता होने के कारण तेरी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है, लेकिन 'सत्य' मेरा सर्वस्व है। सत्य ही मेरा

परम-मित्र है, सत्य से ही मेरी रक्षा होती है, अत. उस परम-प्रिय-सत्य को छोड़कर, मैं तेरे अन्याय का समर्थन करने के लिये झूठ बोलूं, यह कदापि सम्भव नहीं है। यदि सत्य से तू बचता हो. तो मैं, तू कहे वैसा कर सकता हूँ।

अन्यायी-मनुष्य मे, क्रोध बहुत होता है। पिता का यह उत्तर सुनकर, इस लडके का क्रोध उमड़ पडा। उसने कहा "तुम मेरे बाप क्यो हुए ? पुत्र पर दया नही आती और उसकी जान लिवाने को तयार हो ? क्या तुम्हीं अनोखे बाप हो, या दुनिया मे और किसी के भी बाप है ? अच्छी सत्य की पूंछ पकड रखी है कि. लड़का चाहे बचे या मर जाय, किन्तु आप अपने सत्य को ही लिये चाटा करेगे।"

पिता—पुत्र ! तेरे पर मेरी अनन्त दया है, लेकिन तेरे सिर पर इस समय क्रोध का भूत सवार है। इसी से मेरा अच्छा-स्वरूप भी तुझे उलटा दीख रहा है और तू ऐसा बोल रहा है। यदि ऐसा न होता, तो, तू स्वयं समझता कि, मै तुझे बचाने के लिये, ऐसा असत्य भाषण कर दूँ कि "यह उस दिन यहा नही था," तो मेरा 'सत्य-व्रत' भङ्ग हो जाय।

पुत्र—तुम्हीं मेरी जान ले रहे हो।

पिता—मै तेरी जान नहीं ले रहा हू, किन्तु तेरा पाप तेरी जान ले रहा है। मैं तो तेरी रक्षा ही चाहता हूँ। इसीलिये मैं, तेरे को बचपन से ही बुरे कर्म से बचने का उपदेश देता रहा, लेकिन तू

मेरी शिक्षा की उपेक्षा करता रहा। अब भी मैं तुझे यही उपदेश देता हूं कि, सत्य की शरण जा, सत्य ही तेरी रक्षा करेगा। यदि असत्य से प्राण बच भी गये, तब भी मृतक के ही समान है और सत्य से प्राण गये, तब भी जीवन से श्रेष्ठ है।

निश्चित समय पर श्रावक को राजा ने बुलाया और गवाह के कठघरे मे खडा करके पूछा कि,–'कहिये सेठजी, जिस दिन राज्य-भंडार मे चोरी हुई, उस दिन क्या तुम्हारा लडका यहां नहीं था ? और उसने चोरी नहीं की है ?'

सेठ–उस दिन वह नगर मे ही था और चोरी उसी ने की है।

धन्य है इस श्रावक को ! जिसने अपने पुत्र के लिये भी झूठ बोलना उचित न समझा। यदि यह चाहता तो, झूठ बोलकर अपने लडके को निरपराध सिद्ध कर सकता था; लेकिन उसने अपने लड़के से सत्य को कहीं विशेष उच्च समझा। यह श्रावक तो अपने लड़के के लिये भी झूठ नहीं बोला, लेकिन आज के लोग कौड़ी-कौड़ी के लिये झूठ बोलने मे नही हिचकिचाते। इतना ही नहीं, बल्कि अकारण ही हँसी-मजाक और अपनी या दूसरे की प्रशंसा तथा निन्दा के लिये भी, झूठ को ही महत्व देते हैं। कहां तो यह श्रावक, जिसने प्राण-प्रिय-सन्तान को भी सत्य से तुच्छ समझा और कहा आज के लोग, जो सत्य को कौडियो से भी तुच्छ समझते हैं। अस्तु।

यदि श्रावक चाहता, तो झूठ बोल सकता था, लेकिन वह इस

बात को जानता था, कि पुत्र की रक्षा, वास्तव मे सत्यवादी ही कर सकता है, मिथ्यावादी नहीं।

सेठ का उत्तर सुन कर, राजा धन्यवाद देता हुआ सेठ से कहने लगा, "तुम्हारे ऐसे सत्यपात्र सेठ मेरे नगर मे मौजूद हैं, यह जान कर मेरे आनन्द की सीमा नहीं रही। मेरे नगर मे जैसे चोर हैं, वैसे ही सर्वथा सत्य बोलनेवाले मनुष्य भी मौजूद है, यह कितने आनन्द की बात है। मैं तुम पर प्रसन्न हूं, अत तुम इच्छा-नुसार याञ्चा कर सकते हो। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने की प्राणपण से चेष्टा करूंगा।"

सेठ प्रतीक्षा कर रहा था कि, देखे लडके को उसके अन्याय का क्या दड मिलता है, किन्तु राजा के मुख से ये सान्त्वना पूर्ण वचन सुनकर, वह एकान्त में जा बैठा और अपने लड़के को बुला-कर उससे बातचीत करने लगा।

पिता—तेरे पर चोरी का अपराध प्रमाणित हो गया है, अब तुझे जीवित रहने की इच्छा है या मरने की? तू मुझे कहता था कि, झूठ बोलकर बचाओ, किन्तु अब देख कि, सत्य बोलकर भी मै तुझे बचा सकता हूँ। धर्म रहे, तो जीवित रहना उत्तम है; किन्तु यदि धर्म जाने की स्थिति उत्पन्न हो जाय, तो धर्म जाने के पूर्व मृत्यु श्रेष्ठ है। यदि, तुझे जीवित रहने की इच्छा हो, तो, पाप-कर्मो को छोडकर सत्य-मार्ग ग्रहण कर। यदि तू मेरे धर्म का अधिकारी बनना चाहे, तो मैं राजा से तुझे छोड़ देने की प्रार्थना

करूं। इसके पश्चात यदि मैं तेरा आचरण अच्छा देखूंगा, तो तुझे अपना उत्तराधिकारी बनाऊंगा, अन्यथा नहीं।

पुत्र—आपने पहले भी मुझे यही उपदेश दिया था, किन्तु मैं बराबर कुमार्ग पर चलता रहा। यदि अब मै जीवित बच जाऊंगा, तो सदैव अच्छा आचरण रखूंगा। पिताजी! थोडी देर पहले आप मुझे पिशाच के समान मालूम होते थे, किन्तु अब आपके वचन सुनकर मेरी दृष्टि ऐसी स्वच्छ होगई है कि, आप मुझे ईश्वर के समान पवित्र मालूम होते है। जहाँ सत्य है वहीं ईश्वर है, यह बात मैं आज समझ सका। आप धन्य हैं, जो अपने सत्य-व्रत के सन्मुख पुत्र प्रेम को, हेय समझते है। मै, आपको प्रणाम करता हू और प्रतिज्ञा करता हू कि, भविष्य मे मै सत्य का पालन करूंगा। यदि मैं अपने इस व्रत का, ठीक तरह से पालन न कर सकूंगा, तो प्राण त्याग दूँगा। अब आपकी इच्छा पर निर्भर है-चाहे जिलावे या मारें।

हृदय की साक्षी हृदय भरता है। जब सामनेवाले का हृदय स्वच्छ होगा, तो तुम्हारा भी हृदय स्वच्छ ही रहेगा।

लडके की स्वच्छ हृदय मे कही हुई यह बात सुनकर, सेठ राजा के पास गया और प्रार्थना की, कि मेरा लडका भविष्य मे सत्य मार्ग पर चलने का सच्चे-हृदय से प्रण करता है, अत मै आप से यही चाहता हूँ, कि आप उसे छोड़ दे। मुझे और किसी बात की आवश्यकता नहीं है।

राजा ने कहा—हम अपराधी को इसीलिये दंड देते हैं कि, वह भविष्य मे अपराध न करे। किन्तु यदि कोई अपराधी, सच्चे दिल से अपने अपराध पर पश्चात्ताप करले, तो हमें उसके छोड़ देने मे कोई आपत्ति नहीं हो सकती। मैं, तुम्हारे विश्वास दिलाने पर इसे छोडता हूँ और आशा करता हूँ, कि यह अब तुम्हारे आदर्श मे पवित्र बन जायगा।

पहले के राजा लोग, अपराधी को कुमार्ग से सन्मार्ग पर लाने के लिये दड दिया करते थे, आजकल की तरह जेलो मे ठूंसकर केवल बन्दियों की संख्या बढाना उन्हें अभीष्ट न था। वे, राज्य मे शान्ति और प्रजा को सुखी बनाने के इच्छुक रहा करते थे। यदि अपराधी सच्चे हृदय से, अपने अपराध का पश्चात्ताप करके, भविष्य में फिर अपराध न करने की प्रतिज्ञा करता, तो उसे क्षमा कर दिया जाता था। ऐसी उदारता का प्रभाव, मनुष्य के मन पर पड़ा करता है और भविष्य में वह कुमार्ग पर चलने की इच्छा नहीं करता। इसके विरुद्ध, आधुनिक समय के लिये सुना जाता है कि, प्रमाणाभाव से अपराधी को अपराध करते हुए भी चाहे छोड़ दिया जाय, किन्तु अपराधियो के पश्चात्ताप और भविष्य मे अपराध न करने की प्रतिज्ञा का कोई परिणाम नहीं होता। बल्कि, उन्हे जेल भेजकर, या शारीरिक और आर्थिक दड देकर, निर्लज्ज बना दिया जाता है। निर्लज्ज हो जाने पर, अपराध करने से भय नही होता और प्राय अपराधी की आयु, अपराध करने मे ही

व्यतीत होती है। सारांश यह, कि ऐसा होने पर न तो राजा को ही शान्ति मिलती है, न प्रजा को ही और जिस अभिप्राय से अपराधी को दण्ड दिया जाता है, फल उसके विपरीत होता है। अस्तु।

राजा ने, उस सेठ को नगर-सेठ बनाया। राजा को यह विश्वास था, कि आवश्यकता पड़ने पर यह सेठ मुझे सच्ची-सम्मति ही देगा, झूठी नहीं।

पूर्वकाल में, राजालोग सत्यवादी की ही प्रतिष्ठा करते थे, झूठे की नहीं। लेकिन आजकल तो विशेषतः वे ही लोग राजा के प्रतिष्ठा-पात्र हो सकते हैं, जो झूठ बोलने में निपुण हो, झूठी-प्रशंसा करना, हाँ में हाँ मिलाना और दूसरे की निन्दा करना, जिन्हें अच्छी तरह आता हो। इस विपरीतता का परिणाम भी स्पष्ट है। इन जी-हुजूरों के ही कारण, प्रायः राजा लोगों को हानि पहुँचा करती है और प्रजा में वैमनस्य रहता है। ऐसे अनेक लोगों की जगह, यदि राजा को एक भी सच्ची-सम्मति देने वाला हो और राजा उसकी सम्मति की अवहेलना न करे, तो अशान्ति का कोई कारण न रह जाय। राजा और प्रजा में प्रेम भी रहे, तथा सुख-समृद्धि की भी वृद्धि हो।

सत्य के प्रताप से, सेठ ने नगर-सेठ का पद प्राप्त किया, दंड पाते हुए पुत्र को भी बचा लिया और अपने दुराचारी पुत्र को सदाचारी भी बना लिया।

सारांश यह कि, जिस प्रकार सेठ के लडके को सत्य का महत्व उस समय तक मालूम नहीं हुआ, जब तक उसने उसका अभाव अपने नेत्रों से नहीं देख लिया, उसी प्रकार, साधारणतया जो मनुष्य असत्य-मार्ग पर चलते हैं, उन्हें उस समय तक बोध नहीं होता, जब तक वे असत्य के कटुफल को भोगते हुए, अपने ही सामने किसी व्यक्ति को सत्य का अमृत के समान मृदुफल भोगते नहीं देख लेते। किन्तु, इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होने पर जिस व्यक्ति को बोध होता है, वह निकृष्ट-श्रेणी का ज्ञानी समझा जाता है। उत्तम-श्रेणी का ज्ञानी वह है, जो अच्छे और बुरे का विचार पहले ही करले।

सत्य-मार्ग पर चलना, तलवार की धार पर चलने के समान कठिन भी है और फूलो के बिछौने पर चलने के समान सरल भी। इसमे, प्रकृति की भिन्नता का अन्तर है। ऐसे मनुष्य भी है, जो अकारण ही असत्य बोलते हैं और सत्य-व्यवहार को तलवार की धार पर चलने के समान कठिन मानते हैं। उनका विश्वास है कि, सत्य व्यवहार करने वाला मनुष्य, संसार में जीवित ही नहीं रह सकता। दूसरे ऐसे भी मनुष्य हो चुके हैं और है, जो असत्य व्यवहार करने की अपेक्षा, मृत्यु को श्रेष्ठ मानते हैं। सत्य-व्यवहार, उनके लिये फूलो की सेज है। फिर उस मार्ग मे उन्हे, चाहे कितने ही कष्ट हो, किन्तु, वे उसकी परवाह किये बिना ही, प्रसन्नता-पूर्वक अपने मार्ग पर चलते रहते हैं।

जो मनुष्य सत्य-मार्ग का पथिक है, उस पर शत्रु भी विश्वास करते हैं और यह बात ध्रुव सत्य है कि, वह शत्रु से भी विश्वास-घात नहीं करता। इसके लिये, महाभारत में वर्णित एक कथा का उदाहरण दिया जाता है।

जिस समय महाभारत-युद्ध मे, दुर्योधन की प्रायः सब सैना और भाई निःशेष हो गये, सौ भाइयों में से एक दुर्योधन ही जीवित बचा, उस समय, दुर्योधन ने सोचा, कि मै अकेला क्या कर सकता हूँ। पांडवों के पास, इस समय भी पर्याप्त शक्ति है और मैं अपने भाइयो मे से, अकेला हूँ। यह सोचकर, प्राण बचाने के लिये, वह एक तालाब की जलराशि मे जा छिपा। कई दिन तक इसी प्रकार छिपे रहने के पश्चात् उसने सोचा कि मै क्षत्रिय हूँ, उद्योग करना मेरा कर्तव्य है, अत. कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिए कि, जिससे मेरी मृत्यु भी न हो और मैं पूरी शक्ति के साथ अकेला ही पांडवों से युद्ध कर सकूं। सोचते-सोचते, उसके विचार मे यह बात आई, कि युधिष्ठिर सरल-हृदय हैं और सदैव सत्य-भाषण करते है, अत उन्ही से कोई ऐसी युक्ति पूछनी चाहिए, जिससे मैं अजेय हो जाऊं। यह सोच कर, दुर्योधन जल से बाहर निकला और युधिष्ठिर के पास जाकर पूछने लगा कि, महाराज! मुझे कोई ऐसी युक्ति बताइये, जिससे मैं अजेय हो जाऊं और भीम या अर्जुन, जिनका मुझे विशेष भय है-मेरा कुछ न बिगाड सके। युधिष्ठिर ने उत्तर दिया- राजन्! यह सिद्धि तो

तुम्हारे घर में ही है, कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। माता गान्धारी बड़ी सती हैं। यदि वे, एक-दृष्टि से तुम्हारे खुले-शरीर की ओर देख ले तो, तुम्हारा सारा शरीर वज्र के समान कठोर हो जाय। किन्तु एक बात और है; वह यह कि, शरीर के जिस भाग पर उनकी दृष्टि न पड़ेगी, वह कच्चा ही रह जायगा।

युधिष्ठिर की यह बात सुनकर, दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्न हुआ और सोचने लगा कि अब क्या है, अभी जाकर माता गान्धारी के सामने से नग्न होकर निकल जाऊँगा, बस फिर तो अर्जुन और भीम मेरा कुछ भी न बिगाड़ सकेंगे।

दुर्योधन, यह सोचता हुआ अपने घर की ओर जा रहा था कि, मार्ग में उसे श्रीकृष्ण मिले। उन्होंने, दुर्योधन के हृदय की बात जानकर कहा कि, दुर्योधन ! यह युक्ति तो धर्मराज-युधिष्ठिर ने अच्छी बतलाई है और इससे तुम्हारा सारा शरीर वज्र बन भी जायगा, किन्तु बिलकुल नग्न होकर, तुम्हें अपनी माता के पास जाना उचित नहीं है। लज्जा की रक्षा के लिये, कम से कम एक कमल-कोपीन अवश्य लगा लेना।

पहले तो इसके लिये दुर्योधन कुछ आनाकानी करता रहा, किन्तु श्रीकृष्ण के नीति बतलाने पर, उसनें यह बात स्वीकार करली। वह अपनी माता के पास गया और उससे यह सारी कथा कही। गान्धारी, यह सुन कर चौंकी, उसे यह नहीं मालूम

था कि मेरे में ऐसी शक्ति मौजूद है। किन्तु, युधिष्ठिर सदैव सत्य बोलते हैं, कभी असत्य भाषण नहीं करते, अतः अविश्वास करने का कोई कारण भी न था। गान्धारी ने, एक दृढ़-दृष्टि से दुर्योधन को देख लेना स्वीकार किया, तब दुर्योधन एक कमल-कोपीन लगाकर उसके सामने आ खड़ा हुआ। गान्धारी ने, एक दृढ़-दृष्टि से दुर्योधन के शरीर की ओर देख लिया, इससे उसका सारा शरीर तो वज्र के समान कठिन होगया, किन्तु जो स्थान ढका हुआ था, वह कच्चा रह गया। दुर्योधन ने सोचा कि, इस स्थान के कच्चे रह जाने से मेरी क्या क्षति हो सकती है? यह स्थान तो धोती के भीतर रहता है, इस पर चोट करने कौन जाता है। यह विचारकर, वह बाहर निकल आया और पाण्डवों के पास जाकर, दूसरे दिन भीम से गदा-युद्ध करने की बात तय की।

गान्धारी के नेत्रों में, ऐसी शक्ति होने का कारण, उसका पतिव्रत-धर्म था। उसने अपने नेत्रों से, कभी भी किसी पर-पुरुष को बुरी दृष्टि से नहीं देखा था। पतिव्रता स्त्री के नेत्रों में यह शक्ति होती है कि, यदि वह किसी को पुत्र की तरह प्रेम की दृढ़-दृष्टि से देख ले, तो उसका शरीर वज्र-मय हो जाय और यदि क्रोध की दृष्टि से देख ले, तो भस्म हो जाय।

मनुष्य यदि चाहे, तो अपने नेत्रों और वाणी में, सत्य से ऐसी ही शक्ति पैदा कर सकता है। असत्य-स्थान पर दृष्टि न डालने और असत्य भाषण न करने से, वाणी और नेत्रों में ऐसी शक्ति

उत्पन्न हो सकती है कि, नेत्र से जिसे देख ले, उसका शरीर वज्र-सा दृढ़ हो जाय, या भस्म हो जाय, और वाणी से जो कुछ कह दे, वह पूरा ही हो।

प्रायः पहले के लोगों की वाणी में वह शक्ति होती थी कि, जिसके लिये जो कुछ कह देते थे, वही हो जाता था। उनका आशीर्वाद या श्राप, मिथ्या नहीं होता था। लेकिन लोग, सत्य का पालन करते थे और बात-बात में न तो किसी को आशीर्वाद ही देते थे, न श्राप ही। आज के लोग, दिन-रात दूसरे का बुरा-भला चाहा करते हैं, अर्थात् आशीर्वाद या श्राप दिया करते हैं, फिर भी कुछ नहीं होता। इसका कारण यही है कि, सत्य को न पहिचानने से उनकी वाणी निस्तेज है। यदि सत्य को पहिचान ले तो न तो वे इस प्रकार किसी का भला बुरा ही चाहें और न चाहा हुआ भला बुरा निष्फल ही हो।

दूसरे दिन, दुर्योधन और भीम का गदा-युद्ध हुआ। भीम ने अपनी पूरी शक्ति से दुर्योधन के सिर, पीठ, छाती, भुजा आदि स्थानों पर गदा-प्रहार किये, किन्तु सब निष्फल। गदा लगती और टकरा कर लौट आती, दुर्योधन का बाल भी बाँका न होता। इसी समय भीम को, अपनी प्रतिज्ञा याद आई कि, मैंने द्रौपदी चीरहरण के समय, दुर्योधन की जङ्घा चूर्ण करने की प्रतिज्ञा की थी। बस, तत्क्षण उसने अपनी गदा का प्रहार दुर्योधन की जंघा पर किया।

जंघा कच्ची तो रह ही गई थी, गदा लगते ही चूर्ण होगई और दुर्योधन गिर पड़ा।

यह कथा बहुत लम्बी है, अतः इसे यहीं छोड़कर यह विचारना है कि, युधिष्ठिर का यह व्यवहार कैसा कहा जा सकता है।

जो मनुष्य सत्य-व्रत के पालने वाले हैं, वे अपनी शरण में आये हुए शत्रु के साथ भी, दुष्टता का व्यवहार नहीं करते। शरण में आया व्यक्ति, जो सलाह पूछता है, वह बिना किसी प्रकार का भेद भाव रखे और बिना किसी प्रकार की ईर्ष्या-द्वेष के, ठीक-ठीक बतला देते हैं, यह नहीं देखते, कि शरणागत शत्रु है या मित्र।

युधिष्ठिर यह जानते है कि, दुर्योधन से मेरा युद्ध चल रहा है, मेरे भाई भीम और अर्जुन को हराने के लिये ही, यह मुझ से सलाह पूछने आया है। इस समय यदि वे चाहते तो, कोई ऐसी राय बतला सकते थे, जिससे स्वयं दुर्योधन अपना नाश अपने हाथ से कर लेता। किन्तु युधिष्ठिर ने ऐसा न करके, स्वच्छ-हृदय से, सच्ची और लाभदायक सम्मति दी। ऐसा करनेवाले, सत्यमूर्ति-युधिष्ठिर के सत्य-व्रत की, जितनी प्रशंसा की जाय, थोडी है।

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि, जो मनुष्य सत्य मार्ग का पथिक है, वह कभी अपने शत्रु की क्षति के लिये भी झूठ का आश्रय नहीं लेता। बल्कि आवश्यकता पडने पर शत्रु यदि राय पूछे, तो शत्रुता को दूर रखकर, एक मित्र की तरह राय देता है।

युधिष्ठिर को, दुर्योधन ने कितने कष्ट दिये थे, वह युधिष्ठिर को, अपना कैसा भयंकर शत्रु समझता था, फिर भी युधिष्ठिर ने, दुर्योधन से असत्य भाषण नहीं किया। दुर्योधन के अजेय होने पर, युधिष्ठिर की ही हानि थी, क्योंकि उसे पराजित करने के लिये ही, यह युद्ध हुआ था। लेकिन युधिष्ठिर ने ऐसे समय मे भी, सत्य को ही प्रधानता दी और अपनी हानि की कुछ चिन्ता नहीं की। आज के लोगो पर, युधिष्ठिर का सा कोई असमय न होते हुए भी, वे असत्य को प्रधानता देते है और शत्रु से झूठ न बोलना तो दूर रहा, मित्र से भी झूठ बोलने मे संकोच नहीं करते। ऐसे लोग, इस बात को बिलकुल भूल जाते है कि, असत्य की विजय नहीं होती, विजय सत्य की ही होती है। यद्यपि युधिष्ठिर ने स्वयम् दुर्योधन को अजेय होने की युक्ति बता दी थी और वह युक्ति असत्य नहीं थी, फिर भी सत्य की विजय होने के लिये, दुर्योधन को मार्ग मे कृष्ण मिल गये और उसे पराजित होना पड़ा। इसी प्रकार, सत्य की विजय और असत्य की पराजय होने के लिये, कुछ न कुछ कारण हो ही जाया करता है।

जो मनुष्य, सत्य-व्रत का व्रती है, उसके सम्पर्क मे आकर उसकी एक-आध शिक्षा मान लेने से ही, मनुष्य का कल्याण हो जाता है। जैसे, अन्य ग्रंथो मे रामायण ग्रंथ के रचयिता वाल्मीकि ऋषि के लिये प्रसिद्ध है कि, ये पहले डाके मारा करते थे। किन्तु, किसी तपस्वी के एक दिन के सम्पर्क से ही, उनके हृदय मे ऐसा

परिवर्तन हुआ कि, भविष्य मे वही डाकू वाल्मीकि, महर्षि-वाल्मीकि बन गया। इस दृष्टान्त से यह भी सार निकलता है कि, सत्यवादी के संसर्ग से असत्यवादी के हृदय का पल्टा शीघ्र हो जाता है। सत्यव्रत के पालनेवाले मनुष्यों मे, ऐसी ही शक्ति होती है। उनके एक बार के सम्पर्क से ही, पतित से पतित व्यक्ति भी, अपना कल्याण-मार्ग देख लेता है। जिसने सत्य-व्रत का एक देश भी ग्रहण कर लिया, वह भविष्य मे पूर्ण सत्य-व्रती बन जाता है। सत्य के प्रभाव से, परिस्थितिये ही ऐसी उपस्थित होती हैं कि, वे उस मनुष्य को उत्थान की ओर ले जाती है। इसके लिये, जैन ग्रंथों में वर्णित जिनदास नाम के एक श्रावक की कथा का वर्णन, यहाँ अप्रासङ्गिक न होगा।

राजगृही नगर मे, एक बडे व्यापारी के यहाँ जिनदास नाम के श्रावक-कार्यवश गये। जिनदास, उस समय के बडे आदमियो मे गिने जाते थे। व्यापारी ने उन्हे, अपना स्वजातीय-अतिथि समझ-कर उनके लिये, भोजन का विशेषरूप से प्रबन्ध किया। जिनदास ने, व्यापारी से कहा कि, आप मेरे लिये इतना कष्ट न कीजिये, मेरा यह नियम है, कि जिसकी आय सत्य द्वारा होती है. मै उसी के यहाँ भोजन करता हूँ ? मैं विश्वास कर लेता हूँ, और जिसकी आय असत्य से होती है, उसके यहाँ भोजन नहीं करता। यदि आप, मुझे अपने यहाँ भोजन कराना चाहते है तो, अपना आय-व्यय का लेखा मुझे बतलाइये। उससे यदि विश्वास होगया कि,

आपकी आय सत्य से होती है, तो मुझे भोजन करने में किसी प्रकार की आनाकानी न होगी।

जिनदास श्रावक का, व्यापारी से यह कहना कि, "मैं उस मनुष्य के यहां भोजन नहीं करता, जो असत्य से जीविकोपार्जन करता है," यथार्थ है। यह बात अनुभव-सिद्ध है कि, जो मनुष्य जिस प्रकार के उपार्जित भोजन को करता है, उसकी बुद्धि वैसी ही हो जाया करती है। श्रीकृष्ण ने, इसी सिद्धान्त को सामने रख-कर, दुर्योधन के यहां भोजन करने से इनकार कर दिया था और विदुर के यहाँ भोजन किया था।

कई लोग कहते हैं कि, सामायक करते समय न मालूम क्यों हमारा चित्त स्थिर नहीं रहता. लेकिन ऐसा कहनेवाले लोग, यह विचार नहीं करते कि, अनीति से पैदा किया हुआ अन्न पेट मे होने पर, मन स्थिर कैसे रह सकता है ?

जिनदास, इस बात का विश्वास पहले ही कर लिया करते थे कि, इसका भोजन कैसा है। इसीलिये उन्होंने व्यापारी से, अपना आय-व्यय का लेखा बताने को कहा। व्यापारी ने उत्तर मे कहा कि,-'आप तो स्वयं नीतिज्ञ हैं, और भली प्रकार जानते हैं, कि अपनी आय का भेद दूसरे को नहीं बताया जाता। ऐसा होते हुए भी मुझे, आय-व्यय का लेखा बताने के लिये वाध्य करना, कैसे उचित कहा जा सकता है ?'

जिनदास—यदि ऐसा है, और आप अपना लेखा नहीं बताना चाहते हैं, तो आपकी इच्छा। लेकिन, मैं अपने निश्चयानुसार बिना विश्वास किये, भोजन करने मे असमर्थ हूं।

व्यापारी, जिनदास के दृढ-प्रतिज्ञ शब्दों को सुनकर विचारने लगा कि, इनकी प्रतिज्ञा तो ऐसी है और ऐसे सत्पुरुष को बिना भोजन कराये, घर से जाने देना भी अपने भाग्य को बुरा बनाना है। ऐसी अवस्था में, क्या करना चाहिए? क्योंकि अतिथि को निराश लौटाने के लिये कहा है—

अतिथिर्यस्य भग्नाशा गृहात् प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृत दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥

अर्थात—कोई अतिथि, भग्नाशा होकर घर से लौट जावे, तो वह उस गृहस्थ की पुण्यवानी लेकर, अपना दुष्कृत्य उसे देजाता है।

व्यापारी विचारता है कि, सामान्य-अतिथि के लिये भी यह बात है, फिर ये तो महा-पुरुष हैं। इसके सिवाय, इनकी बातों और आकृति से भी जान पडता है कि, ये मेरा लेखा मेरी अप्रतिष्ठा के लिये नहीं देखना चाहते किन्तु अपनी प्रतिज्ञानुसार यह जानना चाहते हैं कि, मेरा आय-व्यय किस प्रकार से होता है। ऐसी दशा मे मेरा कर्तव्य है कि, मैं सच्ची बात कह दूं और इन्हे भोजन किये बिना न जाने दूं।

इस प्रकार सोच-विचारकर, व्यापारी ने जिनदास से कहा कि,-आप लेखा देख कर क्या करेंगे, सच्ची बात मैं जबान से ही सुनाये देता हूं। वास्तव मे तो मैं रात को चोरी करके धन कमाता हूँ, और दिन को व्यापार का ढोग रचकर प्रतिष्ठा प्राप्त करता हूँ।

व्यापारी की बात सुन कर, जिनदास ने कहा कि, ऐसी दशा में मै आपके यहाँ भोजन नहीं कर सकता।

व्यापारी—यह तो, आपका अन्याय है। दूसरों की अप्रतिष्ठा भी करना और फिर भोजन भी न करना, यह कैसे उचित है ?

जिनदास—यद्यपि मैंने आपकी कोई अप्रतिष्ठा तो नहीं की है, फिर भी यदि आप मेरी एक बात को स्वीकार करले, तो मै भोजन कर सकता हूं।

व्यापारी के पूछने पर, जिनदास ने कहा कि-आप चाहे अपने चोरी के कार्य को बन्द न करें, परन्तु सदा सत्य बोलने की प्रतिज्ञा करलें। यदि, आपने इस प्रतिज्ञा को धारण करली, तो मैं भोजन कर लूंगा।

व्यापारी के ऊपर, प्रतिभाशाली जिनदास के शब्दों का बहुत प्रभाव पड़ा। उसने, जिनदास की बात स्वीकार करके, असत्य न बोलने की प्रतिज्ञा कर ली। व्यापारी के प्रतिज्ञा करने पर, जिनदास भोजन करके, व्यापारी के यहाँ से विदा होगये।

सदा की भाँति व्यापारी, आधी रात के समय चोरी करने निकला। परन्तु आज राजा श्रेणिक और अभयकुमार प्रजा का सुख दु ख जानने के लिये, नगर मे चक्कर लगा रहे थे।

पहले के राजा लोग, प्रजा की रक्षा का भार कर्मचारियो पर ही न छोड कर, उसका सुख-दु ख जानने के लिये स्वयं वेश वदल-कर, नगर और राज्य मे भ्रमण किया करते थे। ऐसा करने से, प्रजा की वास्तविक परिस्थिति की उन्हे जानकारी हो जाती थी, और उसके फल-स्वरूप प्रजा कर्मचारियो के अत्याचारों से, सुरक्षित रह कर, शान्ति-पूर्वक अपने दिन व्यतीत करती थी। लेकिन, आज के राजा लोगो को यह पता शायद ही होगा कि, हमारा राज्य कैसा है, कितना है, और प्रजा की दशा क्या है। पता हो भी कहाँ से ? उन्हे तो, प्रजा की गाढ़ी कमाई वहाने और आनन्द-विलास करने से ही, फुरसत न मिलती होगी। ऐसी दशा में, प्रजा तो केवल कर्मचारियो के ही सहारे रही, चाहे वे उस पर अत्याचार करे, या सुखी रखें। किन्तु, राजा श्रेणिक आज के राजाओं की तरह विलास-प्रिय और प्रजा के धन को, अकारण उडाने वाला न था। वह स्वयं, प्रजा के सुख-दु ख का वृत्तान्त जानकर प्रबन्ध किया करता था।

आधीरात के समय अकेले जाते देख, अभयकुमार ने व्यापारी को रोक कर पूछा कि,-'कौन है ?' व्यापारी इस प्रश्न को सुन कर भय-भीत तो अवश्य हुआ, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा याद आते ही,

उसने निर्भय हो उत्तर दिया- 'चोर'। व्यापारी का उत्तर सुनकर, राजा और कुमार विचारने लगे कि,-कहीं चोर भी अपने आपको चोर कहता है? यह झूठा है। उन्होंने व्यापारी से प्रश्न किया, 'कहाँ जाता है?' व्यापारी ने फिर निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया, 'चोरी करने'।

व्यापारी के इस उत्तर को सुनकर राजा और कुमार ने सोचा, कि यह कोई विक्षिप्त है। विनोद के लिये उन्होंने फिर प्रश्न किया- 'चोरी कहाँ करेगा?' व्यापारी ने उत्तर दिया-'राजा के महल में'।

व्यापारी के इस उत्तर से राजा और कुमार का अनुमान और भी पुष्ट होगया कि, वास्तव मे यह विक्षिप्त ही है। उन्होंने व्यापारी को, 'अच्छा जाओ' कह कर जाने दिया। इस प्रकार चोर कहते हुए भी न पकडे जाने से, व्यापारी बड़ा ही प्रसन्न हुआ। वह जिनदास की प्रशंसा करने लगा कि, मैं अपने आपको चोर बतलाता जाता हूँ, परन्तु मुझे कोई पकड़ता नही है। यदि उस समय, मैं भागता या झूठ बोलता, तो अवश्य ही पकड़ लिया जाता, परन्तु सत्य बोलने से बच गया।

व्यापारी, इसी विचार-धारा मे मग्न राजमहल के पास जा पहुंचा। योग ऐसा मिला कि, व्यापारी जिस समय राजमहल को पहुंचा, उस समय राजमहल के पहरेदार नींद मे झूल रहे थे। ऐसा समय पाकर, व्यापारी निधडक महल मे जा घुसा और कोप से रत्नो के भरे हुए दो डिब्बे चुरा कर, चलता बना।

लौटते समय, व्यापारी को राजा और अभयकुमार फिर मिले। उनके प्रश्न करने पर, व्यापारी ने अपने आपको पुनः चोर बताया। राजा और कुमार ने पहले वाला ही विक्षिप्त समझ कर, हंसते हुए प्रश्न किया कि, 'कहाँ चोरी की, और क्या चुराया?' व्यापारी ने उत्तर दिया कि.—'राज-महल मे चोरी करके रत्नो के दो डिब्बे चुरा लाया हू।' राजा ने व्यापारी को पहले ही विक्षिप्त समझ रखा था, इसलिए उसके इस उत्तर पर भी उन्हे कुछ सन्देह न हुआ और उसे जाने दिया।

व्यापारी अपने घर की ओर चलता जाता था और हृदय मे जिनदास को धन्यवाद देता जाता था, कि, उन्होने अच्छी प्रतिज्ञा कराई, जिससे मैं बच गया। अन्यथा मेरे बचने का कोई कारण न था। अब मुझे भी उचित है कि, कभी झूठ न बोलकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन करू। इस प्रकार विचारता हुआ, व्यापारी अपने घर को आया।

प्रात.काल, कोषाध्यक्ष को कोष मे चोरी होने की खबर हुई। कोषाध्यक्ष, कोष को देखकर और यह जान कर कि, चोरी मे रत्नों के दो ही डिब्बे गये हैं, सोचने लगा कि, चोरी तो निश्चय ही हुई है, फिर ऐसे समय मे मै भी अपना स्वार्थ-साधन क्यो न कर लूं? राजा को तो, मै सूचना दूंगा तभी उन्हे मालूम होगा कि चोरी हुई है, और चोरी मे अमुक वस्तु इतनी गई है।

इस प्रकार विचारकर कोषाध्यक्ष ने, कोप में से रत्नो के आठ डिब्बे अपने घर रख लिये और राजा को सूचना दी कि, कोष में से रात को रत्नो से भरे हुए दस डिब्बे चोरी चले गये।

इस सूचना को पाते ही, राजा को रात की बात का स्मरण हुआ। वह विचारने लगा कि, रात को जिसने अपने आप को चोर बताया था, सम्भवत वही रत्नो के डिब्बे ले गया है। लेकिन उसने तो, रत्नों के दो ही डिब्बे चुरा कर लाने को कहा था, फिर दस डिब्बे कैसे चले गये ? जान पडता है कि, आठ डिब्बे बीच ही में गायब हो गए हैं। इस तरह सोच-विचारकर, राजा ने अभयकुमार को रातवाले चोर का पता लगाने की आज्ञा दी।

नगर मे घूमते-घूमते, अभयकुमार उसी व्यापारी की दूकान पर पहुंचा और उसके स्वर को पहचान कर अनुमान किया, कि रात को इसी ने अपने आपको चोर बतलाया था। अभयकुमार ने व्यापारी से पूछा कि, "क्या आपने रात को राजमहल में चोरी की थी ? यदि हा, तो क्या चुराया था और चोरो की वस्तु मुझे बतलाइये।" व्यापारी ने चोरी करना स्वीकार करके, दोनों डिब्बों को अभयकुमार के सामने रख दिया, वह सत्य का महत्त्व समझ चुका था, इसलिये उसे ऐसा करने मे किंचित भी हिचकिचाहट न हुई।

रत्नों के डिब्बों को देख कर विश्वास करने के लिए अभयकुमार ने व्यापारी से फिर प्रश्न किया कि, 'क्या यही थे ?'

व्यापारी ने, इस प्रश्न का उत्तर भी 'हाँ' कह कर दिया। कुमार ने डिब्बों सहित व्यापारी को साथ लेकर, राजा के सम्मुख उपस्थित किया। राजा, कुमार की चातुरी पर प्रसन्न होकर कहने लगा कि, तुमने तो दो ही डिब्बे चुराये थे, जो मिल गये, शेष आठ डिब्बों का पता और लगाओ।

अभयकुमार ने अनुमान किया कि, और डिब्बों में कोषाध्यक्ष की ही चालाकी होगी। उसने, कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहा कि, चोरी गये हुए दस डिब्बों में से दो डिब्बे तो मिल गये, शेष आठ डिब्बे कहा हैं? कोषाध्यक्ष घबरा उठा और कहने लगा कि, चोरी हुई तब मैं तो अपने घर था, ऐसी अवस्था मे मुझे यह क्या मालूम कि, शेष डिब्बे कहाँ हैं।

अभयकुमार, कोषाध्यक्ष की घबराई हुई दशा देख और उस का अस्थिर उत्तर सुनकर ताड गया कि, आठ डिब्बों के जाने में इसी की बेईमानी है। उसने, कोषाध्यक्ष को भय दिखाते हुए कहा कि,—सत्य कहो, अन्यथा बड़ी दुर्दशा को प्राप्त होओगे।

झूठ कहाँ तक चल सकता है? कोषाध्यक्ष के ओंठ भय के मारे चिपक से गये और वह कहने लगा—आठ डिब्बे मैंने अपने ही घर में रख लिये हैं, मैं अपने कर्तव्य और सत्य से च्युत हो गया, इसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ।

अभयकुमार ने कोषाध्यक्ष को भी आठ डिब्बों सहित राजा के सामने उपस्थित किया। कोषाध्यक्ष की धूर्तता और व्यापारी की

सत्यपरायणता देख, राजा ने कोषाध्यक्ष को तो वन्दीगृह भेजा और व्यापारी को कोषाध्यक्ष नियत किया।

राजा ने, व्यापारी को अपराधी होते हुए भी सत्य बोलने के कारण अपराध का कोई दण्ड न देकर, कोषाध्यक्ष नियत किया: इसका प्रभाव लोगों पर क्या पड़ा होगा, यह विचारणीय बात है। अपराध तो व्यापारी और कोषाध्यक्ष के लगभग समान ही थे। लेकिन व्यापारी सत्य बोला था और कोषाध्यक्ष झूठ। झूठ के कारण ही, कोषाध्यक्ष अपने पद से हटाया जाकर जेल भेजा गया और व्यापारी को सत्य के कारण ही, अपराध का दण्ड मिलने की जगह कोषाध्यक्ष पद प्राप्त हुआ। राजा के ऐसा करने से, लोगो के हृदय में सत्य के प्रति कितनी श्रद्धा और झूठ में कितनी घृणा हुई होगी, यह आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

व्यापारी ने, चोरी ऐसा अपराध करके, उसके दण्ड से बचने के लिये भी, अपनी प्रतिज्ञा को तोड़कर झूठ का आश्रय लेना उचित नही समझा, लेकिन आज-कल के लोग साहूकारी मे भी, अपने व्रत का ध्यान न रख, प्रायः असत्य का ही आश्रय लेते हैं। इसका कारण यही है कि, इन्हे सत्य पर विश्वास नहीं है और व्यापारी को सत्य पर विश्वास हो गया था। लेकिन, सत्य पर विश्वास करने और न करने का परिणाम भी इस कथा में स्पष्ट है।

व्यापारी जब कोषाध्यक्ष पद पर पहुँच गया, तब उसने अपने दूसरे दुर्गुण भी निकाल दिये और धर्मात्मा बन गया। अब उस-

की भावना ऐसी हो गई कि, उसने पहले जिस-जिस के यहाँ चोरी की थी, वे सब उन्हे लौटाने लगा।

इस कथा से प्रकट है कि, जिनदास का केवल एक ही उपदेश मान लेने से व्यापारी पूरा धर्मात्मा बन गया और उसी के प्रताप मे राज्य के कोषाध्यक्ष का पद प्राप्त किया।

साराश यह है कि, सत्य बडा ही महत्त्वपूर्ण और कल्याण-कारक सिद्धान्त है। इसके पालन करनेवाले को तो सदैव आनन्द है ही, किन्तु जो व्यक्ति सत्य का पालन करनेवाले व्यक्ति के सम्पर्क मे एक बार भी आ जाता है और उसकी एक भी शिक्षा ग्रहण कर लेता है, तो वह भी भविष्य मे अपना कल्याण-मार्ग पा जाता है।

परलोक के लिये तो सत्य सुखदायक और झूठ दुखदायक है ही, परन्तु इस लोक मे भी सत्यवादी की प्रशंसा और झूठे की निन्दा होती है। इसके सिवाय, झूठ सदा चल भी नही सकता। एक समय सम्भव है कि, झूठ द्वारा किसी को धोखा दे दिया जाय, परन्तु दूसरे समय, वह झूठा मनुष्य धोखा देने मे समर्थ न होगा। बल्कि, झूठे मनुष्य की सच्ची बात पर भी सहसा कोई विश्वास नही करेगा। इसके लिये एक कवि ने भी कहा है——

फेर न ह्वै है झूठ से, जो करिहौ व्यवहार।
जैसे हाँडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार॥

अर्थात्–झूठ का व्यवहार फिर उसी तरह नहीं हो सकता, जैसे लकडी की हण्डी दूसरे समय नहीं चढ़ सकती।

आजकल के लोग, सत्य का महत्व भूल जाने के कारण व्यापारादि कार्यों में तो स्वार्थ–वश झूठ का प्रयोग करते ही हैं, परन्तु धर्म्म–कार्य्य मे भी झूठ को स्थान देने से नहीं हिचकते, और जहाँ स्वार्थ भी नही है, ऐसी जगह, अर्थात हँसी–मजाक आदि व्यर्थ की बातो मे भी झूठ की भरमार रखते हैं। लेकिन इस प्रकार झूठ का प्रयोग करने से, न तो वाणी मे तेज ही रहता है, न संसार मे कोई विश्वास ही करता है। जहाँ सत्यवादी के केवल संकेत—मात्र पर भरोसा किया जाता है, वहाँ झूठे की दस्तावेजो पर भी विश्वास करने में लोग हिचकते है।

झूठ बोलनेवाले का इतना अविश्वास हो जाता है कि, फिर उसके विश्वास पर कोई कार्य नहीं छोड़ा जाता। जैसे व्यवहार सूत्र मे कहा है—

बहवे भिक्खुणो बहवे गणावच्छेइया
बहवे आयरिय उवज्झाया बहुसुआ
बज्झागमा बहुसो बहुसु अगाढागाढेसु
माइमुसावाईअसुइपावजीवी जाव
जीवाए तेसिं तप्पतियं णो कप्पइ
आयरियत्त वा उवज्झायत्तं वा पवत्तिं

वा थेरत्त वा गणधरत्तं वा गणावच्छेइयत्त

वा उद्देसित्तए वा धारित्तए वा ॥

इसका भावार्थ यह है कि-अन्य अपराधो की सरलता-पूर्वक आलोचना करने पर, सूत्रोक्त विधि के पश्चात्, साधु को आचार्यादि पदवी दी भी जा सकती है, लेकिन गाढागाढ कारण होते हुए भी जो साधु कपटयुक्त-झूठ वोले और उत्सूत्र प्ररूपे, वह आ-जीवन ऐसी किसी पदवी को नहीं पा सकता।

झूठ, सब पापों से वढ़कर पाप और सत्य, सब धर्मों से बढ़कर धर्म्म है। संसार के अन्य पाप, विशेषत. सत्य को न समझने से ही होते है, इसलिये बुद्धिमान् लोग झूठ को त्यागकर सत्य को अपनाते है।

सत्य का बल ।

सत्येनाग्निर्भवेच्छीतोऽगाधं धत्तेऽम्बु सत्यतः ।

नासिश्छिनत्ति सत्येन, सत्याद्रज्जूयते फणी ॥

अर्थात्—सत्य के बल से जला देने वाली अग्नि, शीतल हो जाती है; डुबा देनेवाला जल, थाह हो जाता है; काटनेवाली तलवार, नहीं छेद सकती; और भयंकर – विषधर – सर्प, रस्सी के समान विष रहित हो जाता है।

अवत्थंतरेसु बहुएसु माणुसाण
मच्चेण महासमुद्दमज्झे विमूढाऽणिया
वि पोया सच्चेण य उदगसंभममि
वि न वुज्झंति न य मरंति थाहं ते
लभति । सच्चेण य अगणिसंभमंमि
वि न डज्झति उज्जुगा मणूसा सच्चेण
य तत्ततेल्ल तउय लोह सीस काह
छिवंति धरेंति न य डज्झंति मणूसा
पव्वय कडकाहिं मुच्चाति न य मराति ।
सच्चेण य परिग्गाहिया असिपंजर-

गया समगओवि णिढंति । अण्णहा य
सच्चवादी वहबन्धभियोगवेरघोरेहिं
पमुच्चंति य अमित्तमज्झाहिं निढंति
अण्णहा य सच्चवादी सा दिव्वाणि
य देवयाओ करेंति सच्चवयणे रताण ॥

—आवश्यक सूत्र ।

"सत्यवादी, सत्य के प्रभाव से समुद्र या जल की बाढ़ में नहीं डूब सकता, किन्तु उसके लिये वह जल थाह हो जाता है; दिशा को भूल जाने पर, यथा-स्थान लेजानेवाले जन-सैन्यादि से युक्त हो जाता है, अग्नि-उपद्रव, उसकी कोई हानि नहीं कर सकते; न, तपाया हुआ तेल, लोहा, शीशा आदि वस्तुएँ, हाथ मे लेने पर, उसका हाथ ही जला सकती है। सत्यधारी, पर्वत से गिराए जाने पर भी नहीं मर सकता, एवं खड्गधारी शत्रुओ से चारो ओर से घिर जाने पर भी उनके बीच मे अक्षत-शरीर बच आता है, और वध, बन्धन, अभियोग, वैर आदि घोर-उपद्रवो से, बाल-बाल सुरक्षित रहता है। सत्य के पालन करनेवालो मे, ऐसी दिव्य-शक्ति होती है कि, स्वयं देवता भी उसके समीप आते हैं।"

जो मनुष्य सत्य का आचरण करने लग जाता है, वह लोगों में देवता के समान पूजनीय हो जाता है. उसका आत्म-बल बढ़ जाता है और वह उस आत्म-बल द्वारा, महान से महान कार्य

भी कर सकता है। आत्म-बल, किसी भी बल से कम नहीं है; इस बल के सामने भौतिक-बल तुच्छ, हेय और नगण्य है।

जिन तोपों और मशीनगनों के नाममात्र से लोग काँप उठते हैं; जिनकी गडगडाहट की भयंकर ध्वनि से, लोगों के रोम-रोम खड़े हो जाते है, और गर्भवती स्त्रियों के, गर्भ पतित हो जाते हैं; वे ही तोपें तथा मशीनगनें, सत्य द्वारा बल प्राप्त करनेवाले आत्मबली का एक रोम भी नहीं हिला सकतीं। उसके सामने, वे शाक-भाजी भरने के टोकरे के समान, निकम्मी हो जाती हैं।

इस सत्य द्वारा प्राप्त आत्म-बल को, आज-कल सत्याग्रह भी कहते है। सत्याग्रह का वास्तविक अर्थ, सत्यबल का प्रयोग या सत्य पर अटल रहना है।

सत्याग्रह के बल की तुलना, कोई बल नहीं कर सकता। इस बल के सामने, मनुष्य-शक्ति तो क्या, किन्तु देव-शक्ति भी हार मान जाती है। कामदेव श्रावक पर, देवता ने, अपनी सारी शक्ति का प्रयोग किया, लेकिन कामदेव ने अपनी रक्षा के लिये किसी अन्य शक्ति का आश्रय न लेकर, केवल सत्योपार्जित आत्म-बल से ही उस देवता की सारी शक्ति को परास्त कर दिया था।

प्रह्लाद के जीवन का इतिहास भी, सत्याग्रह का दृष्टान्त है। प्रह्लाद ने अपने पिता की अनुचित आज्ञा नहीं मानी। इसलिये उस पर कितने ही अत्याचार किये गये, लेकिन अन्त में सत्याग्रह के सामने, अत्याचारी पिता को ही परास्त होना पड़ा।

बहुत से लोग अत्याचार को मिटाने के लिये, अत्याचार से ही काम लेते हैं। अत्याचार से, अत्याचार चाहे एक बार मिटासा दिखाई भी दे, परन्तु वास्तव मे वह निर्मूल नही होता। समय पाकर वह मिटा हुआ अत्याचार भयंकर-रूप से ज्वालामुखी की तरह फट कर बाहर निकल आता है, और उसकी लपटे प्रतिपक्षियो का नाश करने के लिये पहले से भी ज्यादा उग्रता से लपलपाने लगती हैं। अतएव अत्याचार का अत्याचार से नाश करने का विचार निरर्थक है। अत्याचार से न तो अत्याचार ही भली प्रकार मिटता है, न संसार में शान्ति ही फैलती है। इसका वास्तविक उपाय तो, सत्याग्रह ही है। क्योंकि सत्याग्रह मे दूसरे के नाश का हेतु नहीं रहता, किन्तु सुधारने का हेतु रहता है।

अत्याचार का प्रभाव, केवल शरीर पर ही पडा करता है, मन पर नहीं; और जब तक मन पर प्रभाव न पडे, तब तक जिस कार्य के लिये अत्याचार किया जाता है, उस कार्यमे पूर्णतया और स्थायी सफलता प्राप्त नहीं होती। लेकिन सत्याग्रह का प्रभाव, मन पर पड़ता है और मन सारे शरीरका राजा है। इसलिये, सत्याग्रह द्वारा जो सफलता प्राप्त होती है, वह स्थायी और शान्तिप्रद होती है।

जिस समय भारत मे, चारो ओर हिंसा का साम्राज्य था, लोग यज्ञ के नाम पर अनेक मूक-पशुओ का निर्दयता-पूर्वक वध कर डालते थे, वे पशुओं को अपना खाद्य समझते थे, उस समय

भगवान् महावीर ने, सत्याग्रह द्वारा ही इस हिंसा को मिटाकर शान्ति स्थापित की थी। भगवान महावीर, राजपुत्र थे। यदि वे चाहते, तो राज्य-सत्ता से भी हिंसा को मिटा सकते थे। लेकिन इस तरह से मिटाई हुई हिंसा, निर्मूल न होती, वरन् भगवान् महावीर के न रहते ही, या राज्य-शक्ति में शिथिलता आते ही, वह हिंसा पुनः प्रचलित हो जाती। परन्तु सत्याग्रह द्वारा मिटाई हुई हिंसा, न तो अब तक प्रचलित ही हुई है, न भविष्य में आशंका ही है।

सत्याग्रह, एक महाशस्त्र है। इसका प्रयोग, अत्याचारी पर रामबाणसा अचूक होता है। लेकिन प्रयोग करने के पहले, प्रयोग करनेवाला, अपने दुर्गुणों को दूर करके, अपने ही ऊपर सत्याग्रह का पूरा प्रयोग कर ले। इसमें विजयशाली होने पर, उसका प्रभाव प्राणियों पर ही नहीं, किन्तु जड पदार्थों पर भी पड़ता है। सत्पुरुष के प्रभाव से, अग्नि शीतल हो जाती है, विष अमृत बन जाता है और अस्त्र-शस्त्र फूलसे कोमल हो जाते हैं। जब इतना हो जाता है, तो क्रूर-प्राणियों की क्रूरता दूर होने में सन्देह ही क्या है? इसके विपरीत, अर्थात् अपने दुर्गुणों को दूर किये बिना, केवल दूसरों को दबाने के लिए जो सत्याग्रह किया जाता है, वह सत्याग्रह दुराग्रह हो जाता है, और स्वयं चलानेवाले का ही नाश कर देता है।

भगवान महावीर ने, सत्याग्रह का प्रयोग पहले अपने ही

ऊपर कर लिया था। इसीसे वे, चण्डकोशा ऐसे विषधर सर्प के स्थान पर लोगों के मना करते हुए भी, निर्भयता-पूर्वक चले गये। उस चण्डकोशा ने—जिसकी दृष्टि-मात्र से ही जीवों को मृत्यु का आलिंगन करना पड़ता था—भगवान महावीर को अपने भयंकर विषैले दांतों से काटा भी, लेकिन सत्य के प्रताप से वह विष भगवान् की किंचित-मात्र हानि न कर सका। उल्टे चण्डकोशा की तामसी-प्रकृति भगवान-महावीर की सात्विकी-प्रकृति से, टकरा कर शान्त हो गई और भगवान से बोध पाकर वह कल्याण-मार्ग का पथिक बना।

जिसने सत्य द्वारा अपनी आत्मा को बलवान् बना लिया है, वह मृत्यु से भी भय नहीं करता। प्राणों के असीम संकट में पड़ने पर भी, ऐसा आत्म-बली धैर्य से विचलित नहीं होता और प्रसन्नता-पूर्वक अपने प्राणों का त्याग करता है। एक सत्यधारी महापुरुष की, मृत्यु का दृश्य भी देखिये।

गजसुकुमाल मुनि, श्मशान में बारहवीं भिक्षु-पडिमा धारण किये हुए थे। इतने में, सोमल ब्राह्मण आया। उसने क्रोधित हो, गजसुकुमाल के सिर पर चारों ओर मिट्टी की पाली बना, उसमें, जलते हुए लाल लाल अंगारे भर दिये। लेकिन, गजसुकुमाल मुनि का ध्यान भङ्ग न हुआ।

इस भीषण-विपत्ति में भी, गजसुकुमाल-मुनि का हृदय क्षुब्ध नहीं हुआ, न ब्राह्मण के प्रति उनके हृदय में, क्रोध ही उत्पन्न

हुआ। हाँ, दया के भाव अवश्य उत्पन्न हुए। सत्य तो उनके हृदय मे स्थित था ही, उसी के प्रभाव से उन्होंने विचारा कि, "मेरे सिर पर जो अंगारे रक्खे गये है, उनमे मेरी कोई क्षति नहीं है। पौद्‍गलिक शरीर मेरा नहीं है, मैं तो रूप, रस, गन्ध आदि से रहित, उज्वल आत्मा हूँ। यह शरीर रहता तो अच्छा ही था, किन्तु यदि नष्ट हुआ जा रहा है, तो मुझे कुछ दुःख नहीं है। हाँ, इस ब्राह्मण की अज्ञानता पर मुझे अवश्य दुःख है, जिसके वश यह ऐसा कर रहा है। इसकी अज्ञानता ऐसा करा रही है, इसका दोष नही है। आत्मा तो मेरी और इसकी समान ही है। मुझे इसके प्रति, किसी प्रकार का क्रोध या घृणा नहीं है।"

अङ्गारे जल रहे हैं, गजसुकुमाल मुनि का मस्तक खिचड़ी की तरह उबल रहा है, किन्तु गजसुकुमाल मुनि शान्त हैं और उनका आत्मा, एक दिव्य-आलोक की ओर प्रस्थान करने की, तयारी कर रही है।

गजसुकुमाल मुनि, अन्त तक शान्त रहे। इसी शान्ति के प्रभाव से उन्हें तत्क्षण केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और इस नाशवान् शरीर को त्यागकर मोक्ष प्राप्त किया।

यद्यपि सोमल, अकारण ही, शान्तिमूर्ति गजसुकुमाल मुनि के प्राणों का इस प्रकार ग्राहक बना था, लेकिन गजसुकुमाल मुनि सत्य को पहचानते थे, इस कारण न तो उन्हे दुःख ही हुआ, न सोमल पर क्रोध ही। आज, लोगो को अपने किये हुए अपराधो

का फल भोगने में भी दुःख और दण्ड देनेवाले पर क्रोध होता है। इसका कारण सत्य का न जानना है। सत्य के न जानने और उसकी शक्ति प्राप्त न करने से ही ऐसे लोग, अपराध, खिलखिलाहट और क्रोध का पाप बाँधते हैं।

सारांश यह कि, सत्य-बल के सामने अन्य बल कुछ नहीं हैं। सत्य का बल होने पर भय तो नाम-मात्र को नहीं रहता, न दुःख ही होता है। सत्य को जान लेने और उसके द्वारा आत्म-बल प्राप्त कर लेने से ही, सुदर्शन सेठ ने उस अर्जुन को, जिसने ११४१ मनुष्य मार डाले थे और श्रेणिक ऐसा राजा भी जिसका कुछ न कर सका था, परास्त कर दिया। इतना ही नहीं, किन्तु उसे भी सत्य द्वारा आत्मा के बलवान् बनाने का उपाय बतलाकर, सच्चे-मार्ग का पथिक बना दिया।

श्रावक का स्थूल-झूठ त्याग।

नास्ति सत्यात्परो धर्मो, नानृतात्पातकं परम्।
स्थितिर्हि सत्यधर्मस्य, तस्मात् सत्यं न लोपयेत्॥

महा० शा० ५० ।

"सत्य के समान धर्म्म नही है, न असत्य के समान पाप है। धर्म्म सत्य के आश्रय से टिकता है, इसलिये सत्य का लोप कभी न करना चाहिये।"

जैन-शास्त्र मे पच-महाव्रत बतलाये गये है। उन पच-महाव्रतो मे पहला महा-व्रत अहिंसा का पालन और हिंसा का त्याग है। तथा दूसरा महाव्रत सत्य का धारण और मृषावाद का त्याग है। इन महाव्रतो को साधु तो सूक्ष्म रूप से धारण करता है, लेकिन श्रावक गृहस्थ होनेके कारण सूक्ष्म-रूपसे धारण करके उनका पूर्ण रूप से पालन नही कर सकता। जैसे अहिंसाव्रत के पूर्ण रूप मे पालन करने मे छः काय के जीवो की हिंसा का त्याग होता है, और श्रावक गृहस्थ होने के कारण खेती व्यापारादि संसार के प्रत्येक आवश्यक कार्यो को करता है। इन सांसारिक कार्यों मे वह सर्वथा जीवहिंसा से बच सके, यह असम्भव है। इसी बात को ध्यान में रखकर शास्त्रकारो ने श्रावक को वह अहिंसाव्रत बतलाया है, जिसमे श्रावक के सांसारिक कार्य्यों मे भी बाधा न

पहुँचे और वह व्रत का पालन भी कर सके। श्रावक के अहिंसाव्रत मे केवल स्थूल-हिंसा का त्याग है। स्थूल उसे कहते है, जो लौकिक-व्यवहार मे सरल रीति से जाना जा सके और सूक्ष्म उसे कहते है, जो शास्त्र की सूक्ष्म-दृष्टि मे ही बोध मे आ सके, लेकिन लौकिक-व्यवहार मे जो प्राय. नही आता। गृहस्थाश्रम पालनेवाला गृहस्थ स्थूल सूक्ष्म का विचार न करके स्थूल के बदले सूक्ष्म का पहले ही त्याग करने जाता है तो वह ऐसा चक्कर मे पडता है कि, सूक्ष्म-व्रत तो नही पलता सो नही पलता, लेकिन स्थूलव्रत से भी पतित हो जाता है। इसलिये बुद्धिमान-लोग पहले स्थूल व्रत को धारण करके स्थूल-पाप को छोडते है और फिर जब वे गृहस्थी को छोड़ देते हैं, तब सूक्ष्म व्रतो को धारण करके सूक्ष्म-पापो का त्याग करते है।

जिस प्रकार अहिंसा मे स्थूल और सूक्ष्म के भेद किये गये है, उसी प्रकार सत्य मे भी स्थूल, सूक्ष्म के भेद बतलाये हैं। स्थूल के लिये झूठ बोलना स्थूल-झूठ और सूक्ष्म के लिये झूठ बोलना सूक्ष्म-झूठ कहा जाता है।

श्रावक को जैसे, अहिंसाव्रत मे स्थूल-हिंसा का त्याग बताया गया है, उसी तरह सत्यव्रत मे भी स्थूल-मृषावाद का त्याग बताया गया है। जिस कार्य, बात या विचार को संसार मे झूठ के व्यवहार मे पहचान कर कहा जाता है कि यह 'झूठ' है, और जिससे किसी जीव को अकारण दु:ख होता है, उसे 'स्थूल-झूठ' कहते है। शास्त्र मे, श्रावक के इस दूसरे व्रत सत्य के धारण और स्थूल-झूठ त्याग को 'स्थूल-मृषावाद-विरमण' कहा है।

यदि श्रावक को सूक्ष्म-मृषावाद का त्याग बतलाया जाय, तो

वे गृहस्थ होने से और विशेष ज्ञानवान न होने के कारण, सूक्ष्म-मृषावाद से नहीं बच सकते। इसलिये सूक्ष्म-मृषावाद का त्याग गृहस्थी श्रावकों को न बतलाकर साधुओं को ही बतलाया है और श्रावकों को स्थूल-मृषावाद का त्याग बतलाया है। यदि गृहस्थी-श्रावक पूर्ण या किसी अंश में, सूक्ष्म-मृषावाद से भी बच सकें, तो कोई बुराई की बात नहीं है, लेकिन शास्त्र ने उनके लिये सूक्ष्म मृषावाद का त्याग, स्थूल-मृषावाद के त्याग सा आवश्यक नहीं बतलाया है। क्योंकि सूक्ष्म-मृषावाद त्याग में, सत्य की जो व्याख्या पहले की गई है, उसका पूर्ण रीति से पालन करना पड़ता है और उसके विरोधी झूठ का सर्वथा त्याग करना पड़ता है। लेकिन गृहस्थी श्रावक संसार में रहता है, इसलिये वह यदि सूक्ष्म-झूठ का त्याग करता है, तो उसे संसार में असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। जैसे वह सत्य भी, जिससे स्थावर-योनि के जीवों की विराधना होती है, शास्त्रीय परिभाषा में सूक्ष्म-झूठ कहलाता है। यदि इस सूक्ष्म-झूठ को भी गृहस्थी-श्रावक त्याग दे, तो उसे स्थावर-योनि का आरम्भ-समारम्भ छोड़ना भी आवश्यक होगा; जिसके छोड़ने से उसका गृहस्थाश्रम नहीं चल सकता। इसलिये श्रावक को शास्त्रीय-दृष्टि से सूक्ष्म-झूठ का त्याग न बतलाकर शास्त्र ने उन्हें स्थूल-झूठ त्यागने का ही उपदेश दिया है।

कुछ लोगों का कथन है कि श्रावकों को सर्वथा झूठ न बोलने का उपदेश देना चाहिये, सूक्ष्म-स्थूल के भेद को न समझाना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने से सूक्ष्म-झूठ का अनुमोदन होता है।

व्यापारी ने, इस प्रश्न का उत्तर भी 'हाँ' कह कर दिया। कुमार ने डिब्बों सहित व्यापारी को साथ लेकर, राजा के सम्मुख उपस्थित किया। राजा, कुमार की चातुरी पर प्रसन्न होकर कहने लगा कि, इसने तो दो ही डिब्बे चुराये थे, जो मिल गये, शेष आठ डिब्बों का पता और लगाओ।

अभयकुमार ने अनुमान किया कि, और डिब्बों में कोषाध्यक्ष की ही चालाकी होगी। उसने, कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहा कि, चोरी गये हुए इस डिब्बों में से दो डिब्बे तो मिल गये, शेष आठ डिब्बे कहा हैं? कोषाध्यक्ष घबरा उठा और कहने लगा कि, चोरी हुई तब मैं तो अपने घर था, ऐसी अवस्था में मुझे यह क्या मालूम कि, शेष डिब्बे कहाँ हैं।

अभयकुमार, कोषाध्यक्ष की घबराई हुई दशा देख और उस का अस्थिर उत्तर सुनकर ताड़ गया कि, आठ डिब्बों के जाने में इसी की बेईमानी है। उसने, कोषाध्यक्ष को भय दिखाते हुए कहा कि,—सत्य कहो, अन्यथा बड़ी दुर्दशा को प्राप्त होओगे।

झूठ कहाँ तक चल सकता है? कोषाध्यक्ष के ओठ भय के मारे चिपक से गये और वह कहने लगा—आठ डिब्बे मैंने अपने ही घर में रख लिये हैं, मैं अपने कर्तव्य और सत्य से च्युत हो गया, इसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ।

अभयकुमार ने कोषाध्यक्ष को भी आठ डिब्बों सहित राजा के सामने उपस्थित किया। कोषाध्यक्ष की धूर्तता और व्यापारी की

सत्यपरायणता देख, राजा ने कोपाध्यक्ष को तो बन्दीगृह भेजा और व्यापारी को कोपाध्यक्ष नियत किया।

राजा ने, व्यापारी को अपराधी होते हुए भी सत्य बोलने के कारण अपराध का कोई दण्ड न देकर, कोपाध्यक्ष नियत किया. इसका प्रभाव लोगों पर क्या पड़ा होगा, यह विचारणीय बात है। अपराध तो व्यापारी और कोपाध्यक्ष के लगभग समान ही थे। लेकिन व्यापारी सत्य बोला था और कोपाध्यक्ष झूठ। झूठ के कारण ही, कोपाध्यक्ष अपने पद से हटाया जाकर जेल भेजा गया और व्यापारी को सत्य के कारण ही, अपराध का दण्ड मिलने की जगह कोपाध्यक्ष पद प्राप्त हुआ। राजा के ऐसा करने से लोगों के हृदय में सत्य के प्रति कितनी श्रद्धा और झूठ से कितनी घृणा हुई होगी, यह आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

व्यापारी ने, चोरी ऐसा अपराध करके, उसके दण्ड में बचने के लिये भी, अपनी प्रतिज्ञा को तोड़कर झूठ का आश्रय लेना उचित नहीं समझा, लेकिन आज-कल के लोग साहूकारी में भी. अपने व्रत का ध्यान न रख, प्राय. असत्य का ही आश्रय लेते हैं। इसका कारण यही है कि, इन्हें सत्य पर विश्वास नहीं है और व्यापारी को सत्य पर विश्वास हो गया था। लेकिन, सत्य पर विश्वास करने और न करने का परिणाम भी इस कथा में स्पष्ट है।

व्यापारी जब कोपाध्यक्ष पद पर पहुँच गया, तब उसने अपने दूसरे दुर्गुण भी निकाल दिये और धर्मात्मा बन गया। अब उन-

की भावना ऐसी हो गई कि, उसने पहले जिस-जिस के यहाँ चोरी की थी, वे सब उन्हे लौटाने लगा।

इस कथा से प्रकट है कि, जिनदास का केवल एक ही उपदेश मान लेने से व्यापारी पूरा धर्मात्मा बन गया और उसी के प्रताप से राज्य के कोषाध्यक्ष का पद प्राप्त किया।

साराश यह है कि, सत्य बड़ा ही महत्त्वपूर्ण और कल्याणकारक सिद्धान्त है। इसके पालन करनेवाले को तो सदैव आनन्द है ही, किन्तु जो व्यक्ति सत्य का पालन करनेवाले व्यक्ति के सम्पर्क में एक बार भी आ जाता है और उसकी एक भी शिक्षा ग्रहण कर लेता है, तो वह भी भविष्य मे अपना कल्याण-मार्ग पा जाता है।

परलोक के लिये तो सत्य सुखदायक और झूठ दुखदायक है ही, परन्तु इस लोक में भी सत्यवादी की प्रशंसा और झूठे की निन्दा होती है। इसके सिवाय, झूठ सदा चल भी नहीं सकता। एक समय सम्भव है कि, झूठ द्वारा किसी को धोखा दे दिया जाय, परन्तु दूसरे समय, वह झूठा मनुष्य धोखा देने मे समर्थ न होगा। बल्कि, झूठे मनुष्य की सच्ची बात पर भी सहसा कोई विश्वास नहीं करेगा। इसके लिये एक कवि ने भी कहा है——

फेर न ह्वै हैं झूठ से, जो करिहौ व्यवहार।
जैसे हाँडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार॥

अर्थात्-झूठ का व्यवहार फिर उसी तरह नहीं हो सकता, जैसे लकडी की हण्डी दूसरे समय नही चढ सकती।

आजकल के लोग, सत्य का महत्व भूल जाने के कारण व्यापारादि कार्यों मे तो स्वार्थ-वश झूठ का प्रयोग करते ही हैं, परन्तु धर्म्म-कार्य्य में भी झूठ को स्थान देने से नही हिचकते, और जहाँ स्वार्थ भी नही है, ऐसी जगह, अर्थात् हँसी-मजाक आदि व्यर्थ की बातो मे भी झूठ की भरमार रखते हैं। लेकिन इस प्रकार झूठ का प्रयोग करने से, न तो वाणी मे तेज ही रहता है, न संसार मे कोई विश्वास ही करता है। जहाँ सत्यवादी के केवल संकेत—मात्र पर भरोसा किया जाता है, वहाँ झूठे की दस्तावेजो पर भी विश्वास करने में लोग हिचकते हैं।

झूठ बोलनेवाले का इतना अविश्वास हो जाता है कि, फिर उसके विश्वास पर कोई कार्य नहीं छोडा जाता। जैसे व्यवहार सूत्र में कहा है—

बहवे भिक्खुणो बहवे गणावच्छेइया
बहवे आयरिय उवज्झाया बहुसुआ
बज्झागमा बहुसो बहुसु अगाढागाढेसु
माइमुसावाइंअसुइपावजीवी जाव
जीवाए तेसिं तप्पतियं णो कप्पइ
आयरियत्तं वा उवज्झायत्तं वा पवत्तिं

वा थेरत्त वा गणधरत्तं वा गणावच्छेइयत्त

वा उद्देसित्तए वा धारित्तए वा ॥

इसका भावार्थ यह है कि-अन्य अपराधो की सरलता-पूर्वक आलोचना करने पर, सूत्रोक्त विधि के पश्चात्, साधु को आचार्यादि पदवी दी भी जा सकती है, लेकिन गाढागाढ़ कारण होते हुए भी जो साधु कपटयुक्त-झूठ बोले और उत्सूत्र प्ररूपे, वह आ-जीवन ऐसी किसी पदवी को नहीं पा सकता।

झूठ, सब पापो से बढ़कर पाप और सत्य, सब धर्मों से बढ़कर धर्म्म है। संसार के अन्य पाप, विशेषत. सत्य को न समझने से ही होते हैं, इसलिये बुद्धिमान् लोग झूठ को त्यागकर सत्य को अपनाते हैं।

सत्य का बल ।

सत्येनाग्निर्भवेच्छीतोऽगाधं धत्तेऽम्बु सत्यत ।
नासिश्छिनत्ति सत्येन, सत्याद्रज्जूयते फणी ॥

अर्थात्—सत्य के बल से जला देने वाली अग्नि, शीतल हो जाती है; डुबा देनेवाला जल, थाह हो जाता है, काटनेवाली तलवार, नहीं छेद सकती; और भयंकर - विषधर - सर्प, रस्सी के समान विष रहित हो जाता है ।

अवत्थंतरेसु बहुएसु माणुसाण
सच्चेण महासमुद्दमज्झे विमूढाऽणिया
वि पोया सच्चेण य उदगसभमंमि
वि न वुज्झंति न य मरंति थाह ते
लभति । सच्चेण य अगणिसंभमंमि
वि न डज्झति उज्जुगा मणूसा सच्चेण
य तत्ततेल्ल तउय लोह सीस काइ
छिवंति धरेंति न य डज्झति मणूसा
पव्वय कडकाहिं मुच्चंति न य मरंति ।
सच्चेण य परिग्गाहिया असिपंजर-

गया समराओवि णिढति । अण्णहा य
सच्चवादी वहबन्धभियोगवेरघोरेहिं
पमुच्चंति य अमित्तमज्झाहिं णिडाति
अण्णहा य सच्चवादी सा दिव्वाणि
य देवयाओ करेंति सच्चवयणे रताण ॥

—आवश्यक सूत्र ।

"सत्यवादी, सत्य के प्रभाव से समुद्र या जल की बाढ़ में नहीं डूब सकता, किन्तु उसके लिये वह जल थाह हो जाता है; दिशा को भूल जाने पर, यथा-स्थान लेजानेवाले जन-सैन्यादि से युक्त हो जाता है, अग्नि-उपद्रव, उसकी कोई हानि नहीं कर सकते; न, तपाया हुआ तेल, लोहा, शीशा आदि वस्तुएँ, हाथ में लेने पर, उसका हाथ ही जला सकती हैं। सत्यधारी पर्वत से गिराए जाने पर भी नहीं मर सकता, एवं खड्गधारी शत्रुओं से चारो ओर से घिर जाने पर भी उनके बीच से अक्षत-शरीर बच आता है, और वध, बन्धन, अभियोग, वैर आदि घोर-उपद्रवों से, बाल-बाल सुरक्षित रहता है। सत्य के पालन करनेवालो मे, ऐसी दिव्य-शक्ति होती है कि, स्वयं देवता भी उसके समीप आते हैं।"

जो मनुष्य, सत्य का आचरण करने लग जाता है, वह लोगों में देवता के समान पूजनीय हो जाता है; उसका आत्म-बल बढ़ जाता है और वह उस आत्म-बल द्वारा, महान से महान् कार्य

भी कर सकता है। आत्म-बल, किसी भी बल से कम नहीं है; इस बल के सामने भौतिक-बल तुच्छ, हेय और नगण्य है।

जिन तोपो और मशीनगनों के नाममात्र से लोग कॉप उठते है, जिनकी गडगड़ाहट की भयंकर ध्वनि से, लोगो के रोम-रोम खडे हो जाते है, और गर्भवती स्त्रियो के, गर्भ पतित हो जाते हैं; वे ही तोपे तथा मशीनगने, सत्य द्वारा बल प्राप्त करनेवाले आत्मबली का एक रोम भी नहीं हिला सकती। उसके सामने, वे शाक-भाजी भरने के टोकरे के समान, निकम्मी हो जाती है।

इस सत्य द्वारा प्राप्त आत्म-बल को, आज-कल सत्याग्रह भी कहते हैं। सत्याग्रह का वास्तविक अर्थ, सत्यबल का प्रयोग या सत्य पर अटल रहना है।

सत्याग्रह के बल की तुलना, कोई बल नहीं कर सकता। इस बल के सामने, मनुष्य-शक्ति तो क्या, किन्तु देव-शक्ति भी हार मान जाती है। कामदेव श्रावक पर, देवता ने, अपनी सारी शक्ति का प्रयोग किया, लेकिन कामदेव ने अपनी रक्षा के लिये किसी अन्य शक्ति का आश्रय न लेकर, केवल सत्योपार्जित आत्म-बल से ही उस देवता की सारी शक्ति को परास्त कर दिया था।

प्रह्लाद के जीवन का इतिहास भी, सत्याग्रह का दृष्टान्त है। प्रह्लाद ने अपने पिता की अनुचित आज्ञा नहीं मानी। इसलिये उस पर कितने ही अत्याचार किये गये, लेकिन अन्त मे सत्याग्रह के सामने, अत्याचारी पिता को ही परास्त होना पड़ा।

बहुत से लोग अत्याचार को मिटाने के लिये, अत्याचार से ही काम लेते हैं। अत्याचार से, अत्याचार चाहे एक वार मिटासा दिखाई भी दे, परन्तु वास्तव मे वह निर्मूल नहीं होता। समय पाकर वह मिटा हुआ अत्याचार भयंकर-रूप से ज्वालामुखी की तरह फट कर वाहर निकल आता है, और उसकी लपटे प्रतिपक्षियों का नाश करने के लिये पहले से भी ज्यादा उग्रता से लपलपाने लगती हैं। अतएव अत्याचार को अत्याचार से नाश करने का विचार निरर्थक है। अत्याचार से न तो अत्याचार ही भली प्रकार मिटता है, न संसार मे शान्ति ही फैलती है। इसका वास्तविक उपाय तो, सत्याग्रह ही है। क्योंकि सत्याग्रह में दूसरे के नाश का हेतु नहीं रहता, किन्तु सुधारने का हेतु रहता है।

अत्याचार का प्रभाव, केवल शरीर पर ही पडा करता है, मन पर नहीं, और जव तक मन पर प्रभाव न पडे, तव तक जिस कार्य के लिये अत्याचार किया जाता है, उस कार्यमे पूर्णतया और स्थायी सफलता प्राप्त नहीं होती। लेकिन सत्याग्रह का प्रभाव, मन पर पड़ता है और मन सारे शरीरका राजा है। इसलिये, सत्याग्रह द्वारा जो सफलता प्राप्त होती है, वह स्थायी और शान्तिप्रद होती है।

जिस समय भारत मे, चारों ओर हिंसा का साम्राज्य था, लोग यज्ञ के नाम पर अनेक मूक-पशुओं का निर्दयता-पूर्वक वध कर डालते थे, वे पशुओ को अपना खाद्य समझते थे, उस समय

भगवान् महावीर ने, सत्याग्रह द्वारा ही इस हिंसा को मिटाकर शान्ति स्थापित की थी। भगवान् महावीर, राजपुत्र थे। यदि वे चाहते, तो राज्य-सत्ता से भी हिंसा को मिटा सकते थे। लेकिन इस तरह से मिटाई हुई हिंसा, निर्मूल न होती, वरन् भगवान महावीर के न रहते ही, या राज्य-शक्ति मे शिथिलता आते ही, वह हिंसा पुनः प्रचलित हो जाती। परन्तु सत्याग्रह द्वारा मिटाई हुई हिंसा, न तो अब तक प्रचलित ही हुई है, न भविष्य में आशंका ही है।

सत्याग्रह, एक महाशस्त्र है। इसका प्रयोग, अत्याचारों पर रामबाणसा अचूक होता है। लेकिन प्रयोग करने के पहले, प्रयोग करनेवाला, अपने दुर्गुणो को दूर करके, अपने ही ऊपर सत्याग्रह का पूरा प्रयोग कर ले। इसमे विजयशाली होने पर, उसका प्रभाव प्राणियो पर ही नहीं, किन्तु जड़ पदार्थों पर भी पड़ता है। सत्पुरुष के प्रभाव से, अग्नि शीतल हो जाती है, विष अमृत बन जाता है और अस्त्र-शस्त्र फूलसे कोमल हो जाते हैं। जब इतना हो जाता है, तो क्रूर-प्राणियो की क्रूरता दूर होने मे सन्देह ही क्या है? इसके विपरीत, अर्थात् अपने दुर्गुणो को दूर किये बिना, केवल दूसरो को दबाने के लिए जो सत्याग्रह किया जाता है, वह सत्याग्रह दुराग्रह हो जाता है, और स्वयं चलानेवाले का ही नाश कर देता है।

भगवान महावीर ने, सत्याग्रह का प्रयोग पहले अपने ही

ऊपर कर लिया था। इसीसे वे, चण्डकोशा ऐसे विषधर सर्प के स्थान पर लोगो के मना करते हुए भी, निर्भयता-पूर्वक चले गये। उस चण्डकोशा ने—जिसकी दृष्टि-मात्र से ही जीवों को मृत्यु का आलिंगन करना पडता था—भगवान महावीर को अपने भयंकर विषैले दांतो से काटा भी, लेकिन सत्य के प्रताप से वह विष भगवान् की किंचित्-मात्र हानि न कर सका। उल्टे चण्डकोशा की तामसी-प्रकृति भगवान्-महावीर की सात्विकी-प्रकृति से, टकरा कर शान्त हो गई और भगवान से बोध पाकर वह कल्याण-मार्ग का पथिक बना।

जिसने सत्य द्वारा अपनी आत्मा को बलवान् बना लिया है, वह मृत्यु से भी भय नहीं करता। प्राणो के असीम संकट मे पड़ने पर भी, ऐसा आत्म-बली धैर्य से विचलित नहीं होता और प्रसन्नता-पूर्वक अपने प्राणों का त्याग करता है। एक सत्यधारी महापुरुष की, मृत्यु का दृश्य भी देखिये।

गजसुकुमाल मुनि, श्मशान मे बारहवीं भिक्षु-पड़िमा धारण किये हुए थे। इतने में, सोमल ब्राह्मण आया। उसने क्रोधित हो, गजसुकुमाल के सिर पर चारो ओर मिट्टी की पाली बना, उसमें, जलते हुए लाल लाल अंगारे भर दिये। लेकिन, गजसुकुमाल मुनि का ध्यान भङ्ग न हुआ।

इस भीषण-विपत्ति मे भी, गजसुकुमाल-मुनि का हृदय क्षुब्ध नहीं हुआ, न ब्राह्मण के प्रति उनके हृदय मे, क्रोध ही उत्पन्न

हुआ। हाँ, दया के भाव अवश्य उत्पन्न हुए। सत्य तो उनके हृदय मे स्थित था ही, उसी के प्रभाव से उन्होंने विचारा कि, "मेरे सिर पर जो अंगारे रक्खे गये है, उनसे मेरी कोई क्षति नहीं है। पौद्गलिक शरीर मेरा नही है मै तो रूप, रस, गन्ध आदि से रहित, उज्वल आत्मा हूँ। यह शरीर रहता तो अच्छा ही था, किन्तु यदि नष्ट हुआ जा रहा है, तो मुझे कुछ दुःख नहीं है। हाँ, इस ब्राह्मण की अज्ञानता पर मुझे अवश्य दुःख है, जिसके वश यह ऐसा कर रहा है। इसकी अज्ञानता ऐसा करा रही है, इसका दोष नहीं है। आत्मा तो मेरी और इसकी समान ही है। मुझे इसके प्रति, किसी प्रकार का क्रोध या घृणा नहीं है।"

अङ्गारे जल रहे हैं, गजसुकुमाल मुनि का मस्तक खिचडी की तरह उबल रहा है, किन्तु गजसुकुमाल मुनि शान्त है और उनका आत्मा, एक दिव्य-आलोक की ओर प्रस्थान करने की, तयारी कर रही है।

गजसुकुमाल मुनि, अन्त तक शान्त रहे। इसी शान्ति के प्रभाव से उन्हें तत्क्षण केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और इस नाशवान् शरीर को त्यागकर मोक्ष प्राप्त किया।

यद्यपि सोमल, अकारण ही, शान्तिमूर्ति गजसुकुमाल मुनि के प्राणो का इस प्रकार ग्राहक बनो था, लेकिन गजसुकुमाल मुनि सत्य को पहचानते थे, इस कारण न तो उन्हे दुःख ही हुआ, न सोमल पर क्रोध ही। आज, लोगो को अपने किये हुए अपराधो

का फल भोगने मे भी दुःख और दण्ड देनेवाले पर क्रोध होता है। इसका कारण सत्य का न जानना है। सत्य के न जानने और उसकी शक्ति प्राप्त न करने से ही ऐसे लोग, अपराध, खिलखिलाहट और क्रोध का पाप बाँधते हैं।

सारांश यह कि, सत्य-बल के सामने अन्य बल कुछ नहीं हैं। सत्य का बल होने पर भय तो नाम-मात्र को नहीं रहता, न दुःख ही होता है। सत्य को जान लेने और उसके द्वारा आत्म-बल प्राप्त कर लेने से ही. सुदर्शन सेठ ने उस अर्जुन को, जिसने ११४१ मनुष्य मार डाले थे और श्रेणिक ऐसा राजा भी जिसका कुछ न कर सका था, परास्त कर दिया। इतना ही नहीं, किन्तु उसे भी सत्य द्वारा आत्मा के बलवान् बनाने का उपाय बतलाकर, सच्चे-मार्ग का पथिक बना दिया।

श्रावक का स्थूल-झूठ त्याग।

नास्ति सत्यात्परो धर्मो, नानृतात्पातकं परम्।
स्थितिर्हि सत्यधर्मस्य, तस्मात् सत्यं न लोपयेत्॥

महा० शा० प०।

"सत्य के समान धर्म्म नहीं है, न असत्य के समान पाप है। धर्म्म सत्य के आश्रय से टिकता है, इसलिये सत्य का लोप कभी न करना चाहिये।"

जैन-शास्त्र मे पंच-महाव्रत बतलाये गये है। उन पंच-महाव्रतो मे पहला महा-व्रत अहिंसा का पालन और हिंसा का त्याग है। तथा दूसरा महाव्रत सत्य का धारण और मृषावाद का त्याग है। इन महाव्रतों को साधु तो सूक्ष्म रूप से धारण करता है, लेकिन श्रावक गृहस्थ होनेके कारण सूक्ष्म-रूपसे धारण करके उनका पूर्ण रूप से पालन नहीं कर सकता। जैसे अहिंसाव्रत के पूर्ण रूप मे पालन करने मे छः काय के जीवो की हिंसा का त्याग होता है, और श्रावक गृहस्थ होने के कारण खेती व्यापारादि संसार के प्रत्येक आवश्यक कार्यो को करता है। इन सांसारिक कार्यों मे वह सर्वथा जीवहिंसा से बच सके, यह असम्भव है। इसी बात को ध्यान मे रखकर शास्त्रकारो ने श्रावक को वह अहिंसाव्रत बतलाया है, जिसमे श्रावक के सांसारिक कार्य्यों मे भी बाधा न

पहुँचे और वह व्रत का पालन भी कर सके। श्रावक के अहिंसाव्रत में केवल स्थूल-हिंसा का त्याग है। स्थूल उसे कहते है, जो लौकिक-व्यवहार में सरल रीति से जाना जा सके और सूक्ष्म उसे कहते हैं, जो शास्त्र की सूक्ष्म-दृष्टि से ही बोध में आ सके, लेकिन लौकिक-व्यवहार में जो प्राय: नहीं आता। गृहस्थाश्रम पालनेवाला गृहस्थ स्थूल सूक्ष्म का विचार न करके स्थूल के बदले सूक्ष्म का पहले ही त्याग करने जाता है तो वह ऐसा चक्कर में पड़ता है कि, सूक्ष्म-व्रत तो नहीं पलता सो नहीं पलता, लेकिन स्थूलव्रत से भी पतित हो जाता है। इसलिये बुद्धिमान-लोग पहले स्थूल व्रत को धारण करके स्थूल-पाप को छोड़ते हैं और फिर जब वे गृहस्थी को छोड़ देते हैं, तब सूक्ष्म व्रतों को धारण करके सूक्ष्म-पापों का त्याग करते हैं।

जिस प्रकार अहिंसा में स्थूल और सूक्ष्म के भेद किये गये है, उसी प्रकार सत्य में भी स्थूल, सूक्ष्म के भेद बतलाये है। स्थूल के लिये झूठ बोलना स्थूल-झूठ और सूक्ष्म के लिये झूठ बोलना सूक्ष्म-झूठ कहा जाता है।

श्रावक को जैसे, अहिंसाव्रत में स्थूल-हिंसा का त्याग बताया गया है, उसी तरह सत्यव्रत में भी स्थूल-मृषावाद का त्याग बताया गया है। जिस कार्य, बात या विचार को संसार में झूठ के व्यवहार में पहचान कर कहा जाता है कि यह 'झूठ' है, और जिससे किसी जीव को अकारण दु:ख होता है, उसे 'स्थूल-झूठ' कहते हैं। शास्त्र में श्रावक के इस दूसरे व्रत सत्य के धारण और स्थूल-झूठ त्याग को 'स्थूल-मृषावाद-विरमण' कहा है।

यदि श्रावक को सूक्ष्म-मृषावाद का त्याग बतलाया जाय, तो

वे गृहस्थ होने से और विशेष ज्ञानवान न होने के कारण, सूक्ष्म-मृषावाद से नहीं बच सकते। इसलिये सूक्ष्म-मृषावाद का त्याग गृहस्थी श्रावकों को न बतलाकर साधुओं को ही बतलाया है और श्रावकों को स्थूल-मृषावाद का त्याग बतलाया है। यदि गृहस्थी-श्रावक पूर्ण या किसी अंश में, सूक्ष्म-मृषावाद से भी बच सकें, तो कोई बुराई की बात नहीं है, लेकिन शास्त्र ने उनके लिये सूक्ष्म मृषावाद का त्याग, स्थूल-मृषावाद के त्याग सा आवश्यक नहीं बतलाया है। क्योंकि सूक्ष्म-मृषावाद त्याग में, सत्य की जो व्याख्या पहले की गई है, उसका पूर्ण रीति से पालन करना पड़ता है और उसके विरोधी झूठ का सर्वथा त्याग करना पड़ता है। लेकिन गृहस्थी श्रावक संसार में रहता है, इसलिये वह यदि सूक्ष्म-झूठ का त्याग करता है, तो उसे संसार में असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। जैसे वह सत्य भी, जिससे स्थावर-योनि के जीवों की विराधना होती है, शास्त्रीय परिभाषा में सूक्ष्म-झूठ कहलाता है। यदि इस सूक्ष्म-झूठ को भी गृहस्थी-श्रावक त्याग दे, तो उसे स्थावर-योनि का आरम्भ-समारम्भ छोड़ना भी आवश्यक होगा; जिसके छोड़ने से उसका गृहस्थाश्रम नहीं चल सकता। इसलिये श्रावक को शास्त्रीय-दृष्टि के सूक्ष्म-झूठ का त्याग न बतलाकर शास्त्र ने उन्हें स्थूल-झूठ त्यागने का ही उपदेश दिया है।

कुछ लोगों का कथन है कि श्रावकों को सर्वथा झूठ न बोलने का उपदेश देना चाहिये, सूक्ष्म-स्थूल के भेद को न समझाना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने में सूक्ष्म-झूठ का अनुमोदन होता है।

दूसरे व्रत के अतिचार।

श्रावक के दूसरे व्रत (स्थूल–मृषावाद वेरमण) के पाँच अति-चार हैं। आवश्यक सूत्र में श्रावक को स्थूल–मृषावाद का त्याग बतलाने के साथ ही कहा है—

"थूलगमुसावाडवेरमणस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा पयाला जाणेवा न समारइवारव्या, तं जहा– सहस्साब्भक्खाणे रहस्सब्भक्खाणे सदारमतभेए मोसुवएसे कूडलेहकरणे।"

"स्थूल–मृषावाद–वेरमण व्रत जो श्रावक के लिये धारण करना उचित है, उसके पाँच बडे अतिचार हैं। इन पाँचों के नाम सहस्साब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमन्तभेए, मोसुवएसे, कूडलेहकरणे, है। ये अतिचार श्रावक के जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण योग्य नहीं हैं। इसलिये श्रावक को इनसे बचना उचित है।"

शास्त्र ने, किसी वर्ज्य कार्य के करने का विचार लाने को 'अतिक्रम,' कार्य–पूर्ति के लिये साधन एकत्रित करने को 'व्यति-क्रम,' करने की बिलकुल तयारी है लेकिन अभी किया नहीं है उसे 'अतिचार,' और पूर्ण कर डालने को 'अनाचार' कहा है।

अर्थात् व्रत के उल्लंघन करने की चार मर्यादा हैं। उल्लंघन का प्रारम्भ अतिक्रम से होता है और अन्त अनाचार की शक्ल मे होता है। जैसे कोई मनुष्य असत्य बोलने के लिये उद्यत हुआ। उसका जैसे ही असत्य बोलने का विचार हुआ 'अतिक्रम' हो गया, यानी उसने व्रत की पहिली मर्यादा को तोड़ डाला। अर्थात् किसी व्रत को भंग करने के संकल्प का नाम अतिक्रम है। पश्चात् संकल्प को पूरा करने का जब प्रयत्न करता है, यानी झूठ बोलने के साधन जुटाता है, उसका नाम 'व्यतिक्रम' है। ऐसा करना व्रत की दूसरी मर्यादा का उल्लंघन करना है। फिर व्रत की सापेक्षता रखता हुआ, कुछ अंश मे व्रत का नाश करता है, उसका नाम 'अतिचार' है और निरपेक्ष होकर व्रत का नाश करता है, उसका नाम 'अनाचार' है। शास्त्र मे जहाँ भी अतिचार का उल्लेख है, वहाँ सब जगह व्रत की तीसरी मर्यादा का अर्थात् मध्यम श्रेणी का उपदेश किया है। लेकिन व्रत की अपेक्षा न करके संकल्परूप किया जाय, तो यही अतिचार, अनाचार हो जाता है।

इस दूसरे व्रत के ऊपर वर्णन किए हुए पाँच बड़े अतिचार हैं। जिनके विषय मे पृथक्-पृथक् व्याख्या की जाती है।

१—सहस्साऽभक्खाणे।

यह पहिला अतिचार है। टीकाकार ने इसकी टीका मे लिखा है—

"सहस्साऽभक्खाणे नाम अमितः आख्यानम्,
सहसा अनालोच्याभ्याख्यान मसद्दोषाध्यारोपणं

चौरोऽय मिथ्याद्यभिधान सहसाभ्याख्यानम्
अविमृश्य कलकल्पे मृषावादविरते द्वितीय-
व्रतस्य प्रथमोऽतिचारः।"

'बिना विचार किये हठ-पूर्वक किसी को मिथ्या-दोष लगा देना, जैसे तू चोर है, या तू जार है, इत्यादि, यह पहला सहस्सा-भक्खाणे नाम का अतिचार है।"

इस अतिचार के विषय मे, जितनी भी व्याख्या कीजाय कम है, क्योकि आजकल हठ-पूर्वक किसी पर दोषारोपण कर देना बहुत सुनाई पडता है। दोष की सत्यता पर विचार किये बिना ही किसी पर दोष लगा देना अत्यन्त अनुचित है। लोग यदि इस अतिचार का अर्थ भली प्रकार समझ लेते तो यह दुर्गुण दिखाई न देता। अब भी यदि इस पर विचार किया जाय तो यह दोष मिट सकता है।

पहले के लोगो ने तो अपने इस दूसरे व्रत को अतिचार-रहित ही पालन किया होगा, लेकिन वर्तमान समय मे छल-कपट अधिक मात्रा मे बढा हुआ दिखाई देता है। आजकल, स्वार्थ-वश किसी पर झूठे कलंक लगाने की बाते बहुत सुनाई पडती हैं।

आज के लोग और किसी बात मे तो चाहे निरंकुश न रहते हो, परन्तु जीभपर अंकुश रखने का प्रयत्न शायद ही करते होगे। सम्भवत. इसी कारण, किसी से कोई दोष हुआ हो या न हुआ

हो, उस पर हठ-पूर्वक दोषारोपण कर दिया जाता है। उचित तो यह है कि, यदि किसी मे कोई दुर्गुण दिखाई भी पड़े, तो नम्रता-पूर्वक उसे सूचित करके भविष्य के लिये सावधान कर दिया जाय, लेकिन इसकी जगह नीचो की तरह दूसरे के दोषो का ढिंढोरा पीटने मे ही प्राय: लोग अपना गौरव समझते हैं। आज इस दुर्गुण की सहायता के लिये साधन भी खूब मिल जाते है. दो पैसे के कार्ड या समाचार-पत्र द्वारा किसी के छोटे या निर्मूल दोष को संसार के सन्मुख बढाकर रखना सहज हो गया है।

जिनका कार्य किसी अधर्म पर चलते हुए मनुष्य को अपनी सत्ता से धर्म्म पर लाने का और निष्पक्ष होकर न्याय देने का था, उन पंचायतों को भी आज, पक्षपात-पूर्ण न्याय करते और किसी के द्वारा लगाये गये दोष की सत्यता का विचार किये बिना ही, उसको अपराधी मान लेते सुना जाता है। सम्भवत: उन्हे भी इसी प्रकार से खाने आदि का लोभ, या दूसरे को नीचा दिखाने का विचार रहता होगा। लेकिन यह कार्य पंचायतो के लिये अशोभनीय है।

पंचायतो के लिये ही नही,। किन्तु घर के लोगो के लिये भी यह सुनाई पडता है, कि प्राय: घर के ही लोग, एक दूसरे को झूठे दोष लगा कर नीचा दिखाने का उपाय किया करते हैं. यह कितना नीच कार्य है!

व्रतधारी श्रावको को इस अतिचार से अवश्य बचना चाहिए। सब संसार ही ऐसा करता है, यह विचारना उचित नहीं है,

संसार चाहे सुधरे या न सुधरे, आप अपने कर्तव्य का पालन करते जाइये। जिस प्रकार जूता पहिने हुआ मनुष्य पृथ्वी पर काँटे का अस्तित्व देखना अनावश्यक समझता है, इसी प्रकार आप भी विचार लीजिये, कि मैंने इस दोष को छोड़ दिया, फिर संसार में यह दोष है या नहीं, इसे क्यो देखूं ? मैंने छोड़ दिया, तो मेरी समझ से यह दोष संसार से ही उठ गया।

तलवार का घाव अच्छा हो सकता है, लेकिन झूठे-कलंक का भयकर घाव उपाय करने पर भी अच्छा होना कठिन हो जाता है। इसलिये किसी को झूठा कलंक लगाने का घृणित कार्य त्याज्य है।

२—रहस्सब्भक्खाणे।

यह दूसरा अतिचार है। टीकाकार ने इसके विषय में लिखा है—

> "रहः एकान्तस्तेन हेतुना अभ्याख्यानम् रहोऽभ्याख्यानम्, एतदुक्तं भवति—रहसि मन्त्रयमाणानां वक्ति एते हीदं चेदं च राजापकारादि मन्त्रयन्तीति, एतस्य चातिचारत्वमनाभोगाभणनात्, एकान्तमात्रोपाधितथा च पूर्वस्मात्विशेष, अथवा सम्भाव्यमानार्थभणनादतिचारो न तु भङ्गोऽयमेति।"

"एकान्त मे बैठे किसी विषय का विचार करते हुए मनुष्यों को देखकर उनकी बात के विषय मे अनुमान बाँधना, कि ये राज्यविरोधादि विषय की बात चीत करते होंगे 'रहस्याभ्याख्याण' है।"

आज की जनता मे उक्त दोष बहुत देखा जाता है। कोई स्त्री पुरुष चाहे वे आपस मे बहिन भाई ही हों, यदि एकान्त मे बात करते हो, तो लोग बिना विचार किये ही, केवल बातें करते देखकर उन पर सन्देह करने मे प्रायः नहीं हिचकिचाते और कलंक लगाने लगते है। लेकिन विचारशील-मनुष्य इस दुर्गुण से दूर रहते हैं।

इस दूसरे अतिचार और पहिले अतिचार मे यह अन्तर है, कि पहिले अतिचार मे हठ-पूर्वक दोषारोपण किया जाता है और इस दूसरे अतिचार मे किसी प्रकार का सन्देह पाकर दोषारोपण किया जाता है।

सन्देह पर कलंक लगाने का दोष पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियों मे विशेष देखा जाता है। उनमे बहुतों को कोई कार्य तो रहता नहीं, इसलिये जरा-सी बात को चाहे वह सत्य हो या झूठ, विशेष समय तक उधेड़-बुना करती हैं।

व्रतधारी-श्रावक को इस प्रकार किसी को एकान्त मे बात करते देखकर सन्देह लाना और दोष लगाना या उनकी बातो के विषय मे अनुमान बाँधना उचित नहीं है।

३—सदारमंतभेए ।

यह दूसरे व्रत का तीसरा अतिचार है। टीकाकार ने इस अतिचार के लिये लिखा है—

"स्वदारसम्बन्धिनो मन्त्रस्य–विश्रम्भजल्पस्य भेद प्रकाशन स्वदारमन्त्रभेद एतस्य चातिचारित्व सत्यभणनेऽपि कलत्रोक्ता-प्रकाशनीयप्रकाशनेन लज्जाभिर्मरणाद्यनर्थपर-म्परासम्भवात्परमार्थतोऽसत्यत्वात्त्येति ।"

"अपनी स्त्री ने जो कुछ मर्म-भरी बात कही हो, जिसे छिपाने की आवश्यकता है या स्वयं ने उससे जो कुछ कहा हो, दूसरे के आगे उनका प्रकाश करना 'सदारमंतभेए' कहा जाता है। ऐसा करने से लज्जा–वश उस स्त्री का, अपनी या दूसरे की हत्या कर देना आदि अनर्थ–परम्परा का होना सम्भव है। इसलिये सत्य होने पर भी ऐसा करना अतिचार है।"

आज के पुरुष स्त्रियों को कुछ समझते ही नहीं हैं, बल्कि यहाँ तक तुच्छ समझते हैं, कि स्त्री को पैर की जूती कहने तक में नही हिचकिचाते। इस कारण स्त्रियों से किसी प्रकार की सम्मति लेना तो दूर रहा, उनकी गोपनीय बातों को भी प्रकट करने मे कुछ विचार नही रखते। लेकिन ऐसा समझना पुरुषों की उद्दण्डता के सिवाय कुछ नहीं कहला सकता। स्त्रियो को इस दर्जे

तुच्छ समझनेवाला, स्वयं तुच्छ-बुद्धि का है; वह इस बात को नहीं विचारता, कि यदि स्त्री पैर की जूती है तो उससे मनुष्य कैसे पैदा हो सकता है !

स्त्रियो को इस प्रकार समझ लेने से ही आज भारत के प्राचीन गौरव से लोग हाथ धो बैठे हैं। जिस समय भारत उन्नति की चर्म-सीमा पर पहुंचा हुआ था, उस समय का इतिहास देखने से पता लग सकता है कि तब स्त्रियों को किस उच्च-दृष्टि से देखा जाता था और समाज मे उनका कितना ऊँचा स्थान था। पश्चात् जैसे-जैसे पुरुष, स्त्रियों का सम्मान कम करते गए, वैसे ही वैसे वे स्वयं अपने सम्मान को भी नष्ट करते गये। राष्ट्र मे नवीन चैतन्यता स्त्रियों की उन्नति पर ही निर्भर है।

कई लोगो ने स्त्री-समाज को पंगु समझ रखा है, या यों कहो कि पंगु बना रखा है। यही कारण है कि यहां के सुधार-आन्दोलनों मे पूरी सफलता नहीं होती। यदि स्त्रियों को इस प्रकार तुच्छ न समझकर, उन्हे उन्नत बना दिया जाय, तो जो सुधार-आन्दोलन आज अनेक प्रयत्न करने पर भी सफल नहीं होते हैं; फिर उन्हें असफल होने का सम्भवत. कोई कारण न रहे।

स्त्रियो की शक्ति कम नहीं है। जैन-शास्त्र मे वर्णन है, कि स्त्रियो की स्तुति स्वयं इन्द्रों ने की है और उन्हे साक्षात् देवी कहकर त्रिलोक मे उत्तम बताया है। त्रिलोकीनाथ को जन्म देने वाली स्त्रियें ही है, भगवान् महावीर ऐसे को उत्पन्न करने का सौभाग्य इन्हीं को प्राप्त है। मनु ने भी कहा है——

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।"

"जहाँ पर स्त्रियो का सत्कार होता है, वहाँ देवता, सहायता के लिये उपस्थित रहा करते हैं।"

जिन स्त्रियों का इतना महत्त्व है, उन्हे तुच्छ समझकर अपमानित करने से पुरुप सुखी कैसे बन सकते हैं! सुखी होना तो स्त्रियों की उन्नति और उनके सत्कार पर ही सम्भव है। चाणक्य ने कहा है——

"दाम्पत्यकलहो नास्ति तत्र श्री स्वयमागता।"

"जहाँ दम्पति (पति-पत्नी) मे कलह नहीं रहता है, यानी एक दूसरे को सम्मान-पूर्ण दृष्टि से देखते है-अपमानित नहीं करते-वहाँ लक्ष्मी आप ही विराजमान रहती है।"

स्त्रियों की उच्चता और लज्जा की दृष्टि मे रखकर ही शास्त्रकारों ने उनकी किसी गोपनीय बात को दूसरे के सामने प्रकट करने से पुरुपो को मना किया है। इसके लिये चाणक्य ने भी अपनी नीति मे कहा है—

"अर्थनाश मनस्ताप, गृहिणीचारितानि च।
नीचवाक्यं चापमान, मतिमान्न प्रकाशयेत्॥"

"धन का नाश, मन का ताप (दुःख), गृहिणी का चरित्र यानी उनके विपय की बात, नीच का वचन और अपना अपमान, बुद्धिमान किसी से प्रकट न करे।"

अपनी स्त्री के विषय की गुप्त बात को भी प्रकट करना दूसरे व्रत का अतिचार है, इसलिये बुद्धिमान इससे बचे।

इस अतिचार में पुरुष को लक्ष करके स्त्रियों के विषय में जो कुछ कहा गया है, वे ही बातें स्त्रियों के विषय में समझनी चाहिएँ; और उन्हें इस अतिचार का नाम 'सदारमंतभेए' समझना चाहिए। स्त्रियों का भी कर्तव्य है, कि वे पुरुष से जो कुछ गुप्त बात कहे, या पुरुष उनसे जो कुछ गुप्त बात कहे, उन बातों को किसी के आगे प्रकाशित न करें। ऐसा करने पर उनके लिये भी अतिचार हो जाता है।

४—मोसुवएसे।

यह चौथा अतिचार है। इस पर टीकाकार ने लिखा है—

"मोसोवएसेत्ति मृषोपदेश—परेषाम
सत्योपदेश सहसाकारानाभोगादिना,
व्याजेन वा यथा 'अस्माभिस्तादिदमित्थं
वाऽसत्यमभिधाय परो विजित' इत्येव
वार्ताकथनेन परेषामसत्यवचनव्युत्पादन-
मतिचार, साक्षात्कारेणासत्येऽप्रवर्तनादिति।"

"दूसरे को असत्य का उपदेश करना, मृषोपदेश कहा जाता है। यदि अचानक असावधानी से मिथ्या-उपदेश दे दिया जाय; अथवा अपने पास सम्मति पूछने के लिये आये हुए को मिथ्या उपदेश किया जाय, जैसे—मैंने अमुक समय पर इस प्रकार मिथ्या भाषण द्वारा अमुक कार्य किया था, इत्यादि प्रकार से किसी को

उपदेश किया जाय तो अतिचार है । यद्यपि ऐसा करनेवाला चाहे मिथ्या-भापण न कर रहा हो, तथापि वह दूसरे को मिथ्या-भापण मे प्रवृत्त करता है, अत अतिचार है ।”

आज-कल के लोगो में दूसरे को मिथ्या उपदेश देने की प्रवृत्ति ज्यादा नजर आती है । यदि स्पष्ट रीति से मिथ्या उपदेश र देंगे तो वात को इस प्रकार घुमाकर कहेंगे, कि सुननेवाले के समीप वह उपदेश का ही कार्य करे । इस प्रकार उपदेश देनेवाले ; लिये सुननेवाला तो समझता है, कि ये अनुभवी हैं और जो छ कह रहे हैं वह मेरे हित के लिये । लेकिन यह उसका भ्रम-मात्र होता है । लोग इस वात को नहीं विचारते, कि मे जो कुछ कह रहा हूँ, उसका प्रभाव सुननेवाले पर कैसा पडेगा और उसका परिणाम क्या होगा ! उनका ध्येय तो कुछ और ही रहता है । जैसे क आदमी ने दूसरे से कहा, कि मेरा पेट दुखा करता है, सिर ,खा करता है, या भोजन हजम नहीं होता । सुननेवाले ने इसके त्तर मे कहा कि-ऐसा ही हाल मेरा भी रहा करता था, लेकिन . व से मैंने बीड़ी, सिगरेट, गांजा या चाय पीना प्रारम्भ किया, ' से यह रोग चला गया । यद्यपि ऐसा कहनेवाले ने इन सिनों का स्पष्ट उपदेश नहीं दिया, तथापि उसके कहने का पर्य यही है, कि वह भी इन्हे पिये । यदि ऐसा करनेवाला इन्हें ाने के लिए स्पष्ट कहता, तब तो इस उपदेश की गणना अतिचार में न होकर अनाचार मे होती, लेकिन उसने स्पष्ट नहीं कहा, इसलिये अतिचार है ।

यह बात तो इस अतिचार को समझाने मात्र के लिये कही गई है। लोग ऐसे ही नहीं, बल्कि ऐसे-ऐसे मिथ्या उपदेश दिया करते हैं कि सुननेवाला, एक महान अन्धकार में जा गिरता है, जहाँ से उसे निकलना कठिन हो जाता है। जैसे, किसी के 'मैं गरीब हूँ' यह कहने पर या कहने के प्रथम ही उससे इस बात का कहा जाना, कि—मैं भी ऐसा ही गरीब था, लेकिन अमुक धर्म को छोडकर अमुक धर्म मे चले जाने से, झूठ बोलने से या जुआ खेलने से मालदार हो गया। इस प्रकार के मिथ्या-उपदेश द्वारा अपनी सख्या बढाने के लिये या और किसी कारण से—उसे सत्य से दूर करके असत्य के गड्ढे मे गिरा दिया जाता है।

अहमन्यता के लिये भी बहुत लोग ऐसे ही उपदेश देकर लोगो को अपने चगुल मे फँसाये रखना चाहते हैं। ऐसा करने-वाले स्वार्थ-वश कृत्याकृत्य का भी विचार नहीं करते। लेकिन मिथ्या उपदेश का प्रभाव सदा नहीं रहता, कभी न कभी मिटता ही है। फिर जिसे भी यह मालूम हो जाता है—कि, इन उपदेशो से मुझे भ्रम मे डाला गया था, वह उसी क्षण से उस इस प्रकार भ्रम मे डालनेवाले को घृणा की दृष्टि से देखने लगता है।

ऐसा उपदेश जो सत्य नहीं है और जिसके सुनने से सुनने वाला सत्य से पतित होता है, या बुरे कार्य मे प्रवृत्त होता है, 'मोसुवएसे' है। श्रावक को इस अतिचार से बचने के साथ ही ऐसे उपदेशो पर विश्वास करने से भी बचना उचित है।

५—कूडलेहकरणे ।

दूसरे व्रत का यह पाँचवाँ अतिचार है । टीकाकार ने इसके लिये लिखा है——

"कूटम्-असद्भूत लिख्यतः इति लेखः,
तस्य करणं—क्रिया कूटलेखाक्रिया—कूटलेख-
करण अन्यमुद्राक्षरबिम्बस्वरूपलेखकरण-
मित्यर्थः ।"

"जाली लेख, किसी दूसरे के अक्षर से अक्षर, नकली छाप मुहर आदि बनाना 'कूटलेखकरण' है ।

वे बातें, जिनकी गणना झूठ में है, लेखनकला द्वारा कार्यरूप में परिणत करना 'कूटलेखकरण' अर्थात् झूठा-लेख लिखना कहलाता है । झूठे दस्तावेज लिखना, समाचारपत्रों मे झूठी खबरें देना, खोटे सिक्के, नोट, हुण्डी आदि की रचना करना, आदि-आदि बातें यदि असावधानी से हो जायँ तो अतिचार है, अन्यथा अनाचार है । जैसे, किसी ने कहा कि अमुक बात ऐसी है, उस बात के सत्य होने का विश्वास नहीं है, लेकिन इस ऐसा कहनेवाले के विश्वास पर इस झूठी बात को समाचारपत्रों मे छपवा दिया जाय, तो अतिचार है । किन्तु यह मालूम होते हुए भी, कि यह बात असत्य है, यदि ऐसा किया जाय तो अनाचार है । इसी प्रकार दस्तावेज आदि के विषय में भी समझना चाहिये ।

आजकल, झूठे लेख लिखना, झूठी दस्तावेज बनाना, झूठे सिक्के आदि बनाना विशेष बुराई देना है। यदि विचारा जाय, तो इसका मूल कारण लाभ के सिवाय और कुछ न होगा। लोभ के वश होकर ही लोग सत्यासत्य का विचार नहीं करते और इसी से ऐसा करने में नहीं हिचकिचाते। जाली-दस्तावेज बनाकर, एक के दो या और ज्यादा लिख-लिखाकर गरीबों के गले काटने को ही, बहुधा आजकल के लोगों ने व्यापार मान रखा है॥ ऐसा करनेवाले इस बात को नहीं विचारते, कि इस तरह से द्रव्योपार्जन करके हम कितने दिन आनन्द उड़ा सकते हैं? और ऐसे आनन्द उड़ाने का भावी परिणाम क्या होगा? ऐसा करने से संसार में तो अपकीर्ति होती ही है, लेकिन उस लोक में भी-जहां कि अन्त समय सब को जाना पड़ता है-सुख प्राप्त नहीं होता, किन्तु भयंकर-कष्ट प्राप्त होना स्वाभाविक हो जाता है। ऐसे भाइयों को यह ध्यान में रखना उचित है, कि सत्य के व्यापार से यदि लाभ कम भी हुआ तो वह उतना ही लाभ सांसारिक कार्य चलाने के लिये पर्याप्त होने के साथ ही, इस लोक और परलोक दोनों जगह सुख-दाता होगा, लेकिन असत्य के व्यापार का ज्यादा लाभ दोनों ही जगह दुःख प्राप्त करायेगा।

किसी के विरुद्ध, समाचारपत्रों में झूठे लेख लिखने, हैण्ड-बिल छपवाने, आदि का तो आजकल फैशन सा हो गया है प्रायः लोग इसी में अपनी विद्वत्ता समझने लगे है। ऐसा करनेवाले भी इस बात को बिलकुल भूल से जाते है, कि इस असत्य

कार्य का उस लोक मे क्या परिणाम होगा। उस लोक को भूलने के साथ ही उन्हे यह भी ध्यान नही रहता, कि हमारे इस झूठ के खुलने पर हम इस लोक में भी कैसे निन्द्य समझे जायँगे और लोगो का हम पर कितना अविश्वास हो जायगा।

इस अतिचार को वताने का तात्पर्य यह है, कि उस लेखन कार्य से–जो झूठ की परिभापा मे आता है–वचा जाय। किसी असत्य कार्य को असावधानी या झूठ से कर डालने मे भी अतिचार है, इसलिये प्रत्येक कार्य मे सावधानी रखने की आवश्यकता है।

—:*:—

उपसंहार।

केवल श्रावको का ही नही, मनुष्य–मात्र का कर्तव्य है कि मन, वचन और काय से सत्य का पालन करे। पशुओ मे भी सत्य वर्तमान है, फिर मनुष्य–समाज सत्य से वंचित रहे, यह कितना बुरा है। इसलिये मनुष्य–मात्र को सत्यका पालन करना उचित है।

श्रावको के लिये, इस व्रत का धारण करना आवश्यक है। इस व्रत के धारण करने से, वे झूठ के भयकर–पाप से वचे रह सकते है। विना सत्य को अपनाये, धर्म का पालन उचित–रूप से नहीं हो सकता।

स्थूल–झूठ के जो विभाग वतलाये है, वे श्रावक के लिये सर्वथा त्याज्य है। इन विभागो के वताने का तात्पर्य यह है कि, गृहस्थी मे प्राय: इन्ही कारणो से झूठ वोला जाता है। इनका

त्याग करने पर स्थूल-झूठ मात्र का त्याग हो जाता है और लौकिक व्यवहार मे वह किसी प्रकार का असत्याचारी नहीं रहता।

अतिचारो का उल्लेख, शास्त्रकारो ने इस अभिप्राय से किया है, कि गृहस्थी में इन बातो का कार्य विशेष पडता है और असावधानी या भूल से इन कार्यों का हो जाना सम्भव है। इसलिये श्रावक को अपने व्रत में सावधानी रखने के वास्ते ही, अतिचारों का रूप बतलाया गया है। श्रावकों को अतिचार रहित व्रत पालन करने और अतिचार न हो जाय, इस बात से सावधान रहने की आवश्यकता है। जिस प्रकार राज्य की सीमा होती है, ऐसे ही व्रत की सीमा अतिचार हैं। इन सीमाओ का उल्लंघन करना व्रत का उल्लंघन है। व्रत का पूर्ण रूप से पालन तभी समझा जाता है, जब उसमे अतिचार न हो। यदि व्रत मे अतिचार का ध्यान न रखा गया तो व्रत अपूर्ण है।

इस दूसरे व्रत को अतिचार रहित पालन करने से, श्रावक अपने आप के लिये सुगति का आयुष्य बाँधता है। क्योंकि इस व्रत को पूर्ण रूप से पालने पर श्रावक, अन्य पापो से भी लग भग बच जाता है और पापों से बचना अपने आपको कुगति में डालने से बचाना है। अत. इस व्रत के पालने वालों का सदा कल्याण ही है।

ॐ

शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

—:.:—

सूचना ।

इस मण्डल द्वारा निम्न पुस्तकें और प्रकाशित हो चुकी हैं। जो सज्जन पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज के व्याख्यानों का आनन्द पुस्तकों द्वारा प्राप्त करने और अपने जीवन को सात्विक बनाने के इच्छुक हों, वे इन पुस्तकों को अवश्य पढ़ें।

[१] श्रावक का अहिंसाव्रत [द्वितीयावृत्ति] मूल्य ।)

[२] श्री सकडाल पुत्र श्रावक की कथा । मूल्य ।=)

[३] धर्म-व्याख्या । बिना मूल्य ।

[४] सत्य-मूर्त्ति हरिश्चन्द्र-तारा——

यह पुस्तक प्रेस में छप रही है । इसकी प्रशंसा करना सूर्य को दीपक से देखना है। ग्राहकों में अभी से नाम लिखवा रखिये, अन्यथा दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा करनी होगी।

मिलने का पता--

श्री साधुमार्गी-जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय का हितेच्छु-श्रावक-मण्डल, रतलाम (मध्यभारत)